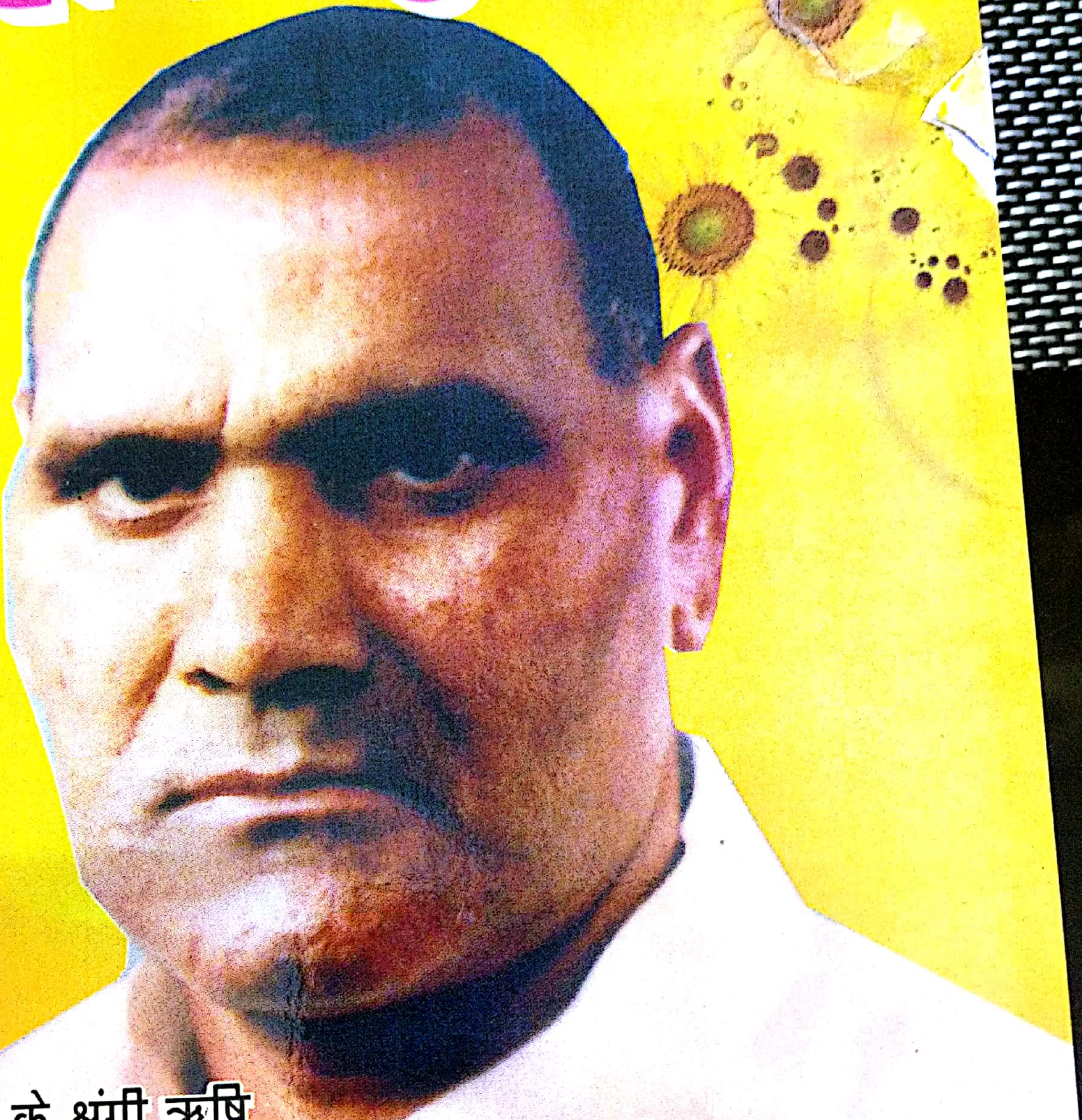
॥ ओ३म् ॥

वैदिककालीन महान विदुषियाँ



पूर्व जन्म के श्रृंगी ऋषि

पूज्यपाद ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज

द्वारा योग मुद्रा में प्रकथित प्रवचनों से

महान पुत्रों को जन्म देने वाली महान विदुषी माताओं का संग्रह

आर्यावर्त प्रकाशन, अमरोहा (उ.प्र.)

॥ ओ३म् ॥

वैदिककालीन महान विदुषियाँ

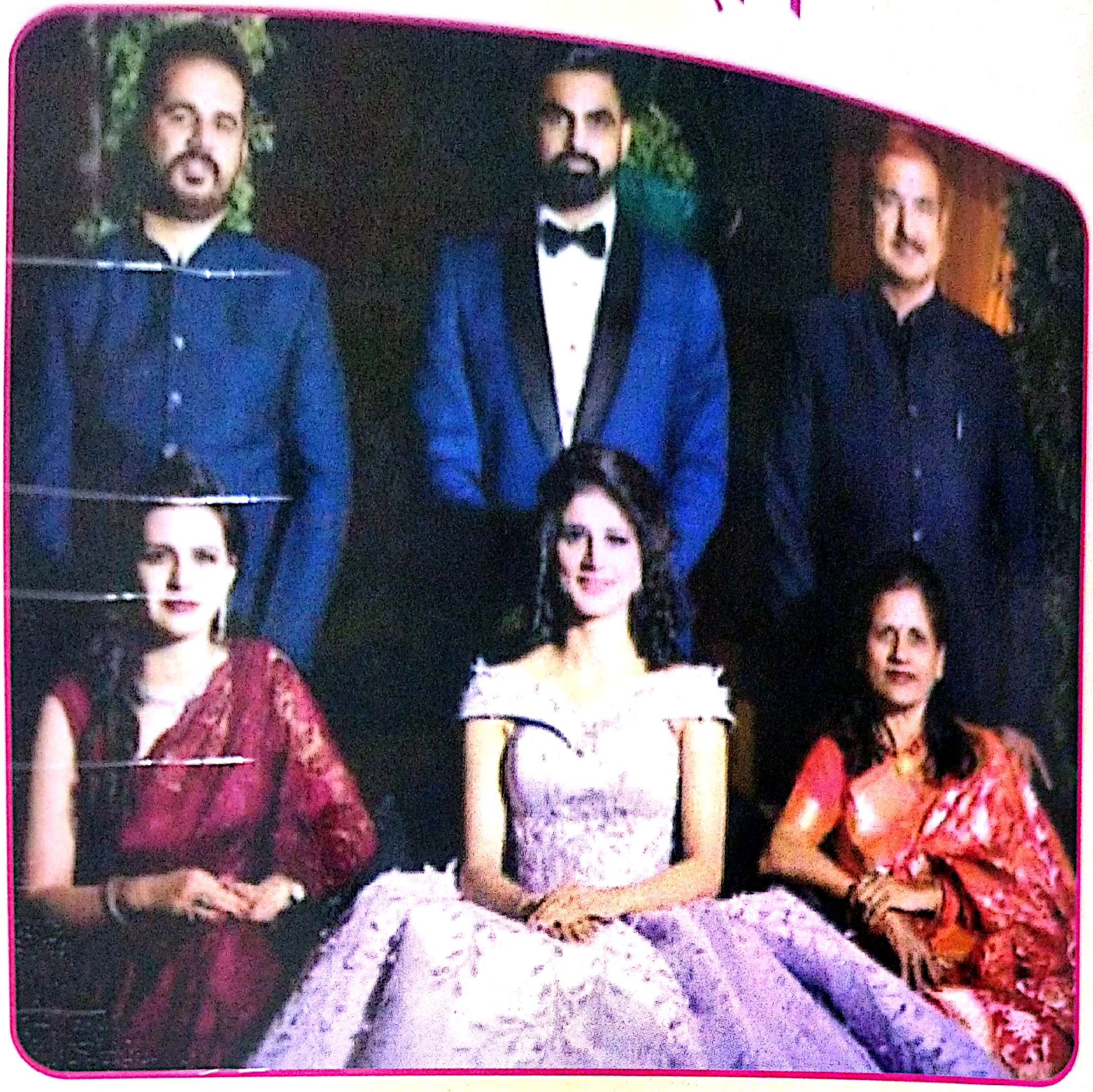
पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज
(पूर्वजन्म के शृंगी ऋषि)
द्वारा योगमुद्रा में प्रकथित प्रवचनों का संकलन

-: संकलनकर्ता :-
सुमन कुमार वैदिक/ श्रीमती अनीता शर्मा
जे-380, बीटा सेकेंड, ग्रेटर नोएडा
फोन : 8368508395 एवं 9456274350

-: संपादक :-
डॉ0 बीना आर्या/ डॉ0 अशोक कुमार आर्य

: प्रकाशक :
आर्यावर्त प्रकाशन, सौम्या सदन, गोकुल विहार, अमरोहा (उ.प्र.)
चलभाष : 9412139333

श्रद्धा-दान



जीवेम शरदः शतम्, भूयस्य शरदः शतात्...

इंजी. चन्द्रहास जी का याज्ञिक परिवार

(सेवानिवृत्त महाप्रबन्धक– बीएसएनएल)

ओ३म स्तुता मया वरदा वेद माता, प्रचोदयन्ताम् पावमानी द्विजानाम्

आयुः, प्राणं, प्रजाम्, पशुं, कीर्तिं, द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्।

मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्।। (अथर्ववेद १९/७१/१)

अर्थात् वेद के अध्ययन से जो विद्वानों को भी प्रेरणा देने वाला और पवित्र करने वाला है, इस संसार में आयु, स्वास्थ्य, पुत्रपौत्रादि पशु, यश, धन, ज्ञान और तेज की वृद्धि होकर मोक्ष की प्राप्ति अर्थात् सांसारिक बन्धनों से मुक्ति भी सहज हो जाती है।

पूर्व जन्म के शृंगी ऋषि

पूज्यपाद ब्र० कृष्णदत्त जी महाराज

का संक्षिप्त परिचय



पूज्यपाद गुरुदेव का जन्म लगते असौज तीज सन् 1942 में ग्राम खुर्रमपुर-सलीमाबाद, जनपद गाजियाबाद उत्तर प्रदेश में हुआ था। इनके पिताजी श्री नानक चन्द और माताजी श्रीमती सोना देवी थीं। लगभग दो मास की अवस्था में शवासन में लेटने से ही कुछ समय के उपरांत इनकी गर्दन दोनों ओर हिलने लगी और होठ फड़फड़ाने लगे। इस क्रिया की पुनरावृत्ति होने पर भूत-प्रेत का उपचार प्रारम्भ हो गया। परन्तु इनकी उस विशेष अवस्था में जाने की घटनाएं बढ़ती रही और आयु बढ़ने के साथ-साथ मन्त्रपाठ और प्रवचन स्पष्ट सुनाई देने लगे। छः वर्ष की आयु में इन्हें भयानक चेचक निकली, जो इनके मुख-मण्डल पर अपनी स्मृति छोड़ गयी।

सात वर्ष की आयु में ही अपने गांव में ही पशुओं व कृषि के कार्य के लिए नौकरी करने लगे। धीरे-धीने इनके प्रवचनों की क्रिया को मनोरंजन व कौतुक का साधन बनाया जाने लगा। एक दिवस प्रवचन की प्रक्रिया के पश्चात् पिता द्वारा अत्यधिक पिटाई के कारण लगभग 15 वर्ष की अवस्था में भीषण परिस्थितियों में मध्य रात्रि में गृह को त्याग कर विचरण करते हुए बरनावा जा पहुंचे। वहां पर आप योगमुद्रा में समाधिस्थ होकर प्रवचन करने

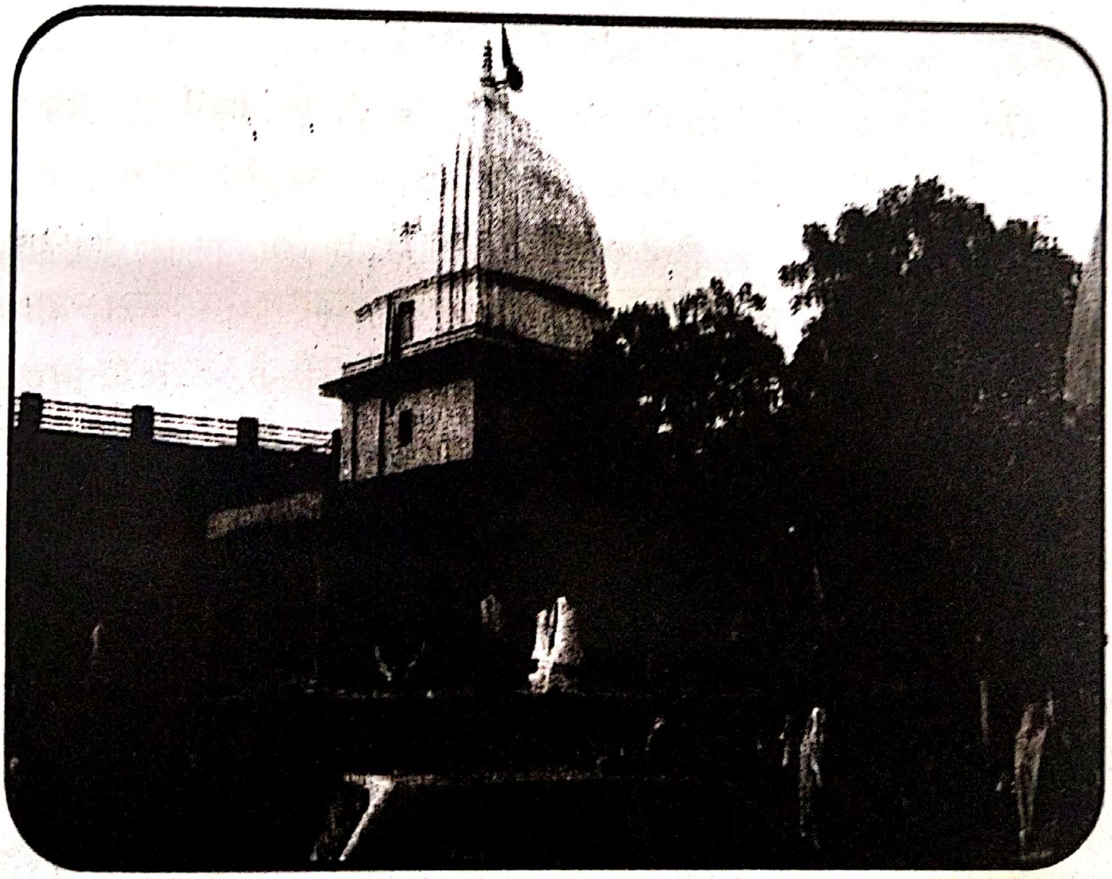
लगे, जिसकी सुगन्धी आस-पास में तीव्रता से फैल गयी। आपने अपने प्रवचनों के माध्यम से वेदपारायण यज्ञों का आयोजन करना शुरु कर दिया। जन-समूह के अथाह प्रेम व सहयोग से बरनावा लाक्षागृह पर पांच यज्ञशालाएं, महानन्द संस्कृत महाविद्यालय, आश्रम व गऊशाला की स्थापना की, जिसका प्रबन्ध उनके द्वारा स्थापित श्री गांधीधाम समिति की देखरेख में होता है।

यह 28 दिसम्बर 1961 में पहली बार दिल्ली प्रवचन के लिए आए। अथाह ज्ञान के भण्डार, आध्यात्मिक जगत की महान व अद्भुत विभूति के प्रवचन सुनने के पश्चात् प्रवचनों को टेप करके प्रकाशित करने के लिए वैदिक अनुसंधान समिति का दिल्ली में गठन किया गया। जन्म-जन्मान्तरों के शृंगी ऋषि की पुण्य आत्मा ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज इस अज्ञानता के युग में वैदिक संस्कृति का पुनः से उत्थान करने के लिए जीवनपर्यन्त लगे रहे। ऋषि-मुनियों ने अनुसंधान के द्वारा भौतिक व आध्यात्मिक विज्ञान को अपने जीवन में कितना साकार किया है, उसकी अथाह चरमसीमा इनके प्रवचनों में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। इस अथाह ज्ञान को मानवता के लिए आचरण व व्यवहार में लाने का सरल व श्रेष्ठ मार्ग प्रदर्शित किया है और साहित्य की गुत्थियां स्पष्ट की हैं, जिससे मानव अपना व जनसाधारण का कल्याण करते हुए इस भव सागर से पार हो सकता है।

यह दिव्य आत्मा 15 अक्टूबर 1992 को पचास वर्ष की अवस्था में ब्रह्म मुहूर्त के समय अपने लोकों को गमन कर गयी।

मेरठ, बड़ौत रोड पर जनपद बागपत में महाभारतकालीन ऐतिहासिक टीला आज भी विद्यमान है, जहां कभी पाण्डवों को अज्ञातवास के दौरान भस्म करने के लिए कौरवों के द्वारा लाक्षागृह का निर्माण किया गया था। यहां आज भी तत्कालीन गुफाएं विद्यमान हैं, जहां पुरातत्त्व विभाग द्वारा खुदाई की जा रही है जो आगन्तुकों के लिए आकर्षण का केन्द्र है। इस ऐतिहासिक स्थली पर महर्षि महानन्द गुरुकुल महाविद्यालय के नाम से आज बहुत विशाल गुरुकुल स्थापित है जहां पांच विशाल एवं भव्य यज्ञशालाएं भी हैं, जहां प्रतिवर्ष शिवरात्रि से होली के मध्य रविवार से रविवार तक आठ दिनों तक पांच यज्ञशालाओं में चतुर्वेद पारायण महायज्ञ का आयोजन किया जाता है, जिसमें देश व विदेश से हजारों श्रद्धालु नर-नारी पधारकर यज्ञ में

आहुतियां प्रदान करते हैं। विक्रम संवत् 2064 तदनुसार 1907 में एक और विशाल यज्ञशाला का यहां निर्माण किया गया है, जिसमें 2007 में श्री कृष्णपाल किरठल (मेरठ निवासी) द्वारा मुख्य सहयोग तथा हॉलैण्ड निवासी माता पण्डिता चन्द्रकली जी द्वारा भी विशेष सहयोग प्रदान किया गया। यहां एक विशाल गऊशाला भी है। इस पावन परिसर में प्रतिवर्ष अनेक कार्यक्रम सम्पन्न होते हैं, जिनमें रक्षाबन्धन (श्रावणी पर्व) पर एवं ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी के जन्मदिवस के उपलक्ष्य में आश्विन मास की कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा से तृतीया तक आयोजित किया जाता है। शिवरात्रि से होली के मध्य अनुष्ठान के साथ ही गुरुकुल का वार्षिकोत्सव पांचों यज्ञ-वेदियों पर भव्य चतुर्वेद पारायण महायज्ञ का आयोजन किया जाता है। निश्चय ही यह एक दर्शनीय स्थल है। एक बार इस पुण्यभूमि पर अवश्य पधारें।



लाक्षागृह बरनावा स्थित पूज्यपाद ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी द्वारा
स्थापित महर्षि महानन्द गुरुकुल की विशाल यज्ञशाला

प्राक्कथन

व्यक्तिगत उन्नति के लिए आश्रम व्यवस्था और सामाजिक उन्नति के लिए वर्ण व्यवस्था को ऋषियों ने वेद के आधार पर बनाया। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास ये आश्रम व्यक्ति के स्वयं के जीवन को उन्नत करते हैं। वैसे तो सभी चारों आश्रम अपने–अपने स्थान पर महत्त्वपूर्ण हैं, किन्तु गृहस्थाश्रम अन्य सभी आश्रमों की पालना करते हुए अपने परिवार सम्बन्धी जनों की पालना आदि करने से और भी श्रेष्ठ हो जाता है, कदाचित् इसलिए महर्षि मनु ने कहा है–'ज्येष्ठाश्रमो गृही'। वेद गृहाश्रमियों के लिए उपदेश देता है–

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत् वत्सं जातमिवाघ्न्या।। (अथर्व.– 3–10–01)

हे गृहस्थों! वैसा ही कर्म करो जिससे तुमको अक्षय सुख हो। अर्थात् (वः) तुम्हारा (सहृदयम्) जैसी अपने लिए सुख की इच्छा करते और दुःख नहीं चाहते हो, अन्य सबसे समान हृदय रहो। मन से अच्छे प्रकार प्रसन्नता और वैर–विरोध रहित तुम्हारा व्यवहार हो, जैसे गऊ उत्पन्न हुए बछड़े पर वात्सल्य भाव से जैसे वर्तती है, वैसे ही तुम एक–दूसरे से प्रेमपूर्वक व्यवहार करो।

गृहस्थ आश्रम में प्रेम पूर्वक सद्व्यवहार करते हुए अपनी उन्नति करना और उत्तम सन्तान का निर्माण कर पितृऋण से उऋण होना है। अन्य आश्रमों में जैसे तप किया जाता है वैसे ही गृहस्थाश्रम में विशेष तप किया जाता है। सबसे अधिक उत्तरदायित्व गृहस्थाश्रम में ही होता है। उस का ठीक–ठीक पालन करना एक बड़ा तप है जो पति–पत्नी गृहस्थ जीवन में एक दूसरे की भावना का सम्मान करते हैं वह अधिक सुख और व्यवस्थित होते हैं। ऋषियों ने कहा है "संसार का सबसे बड़ा सुख गृहस्थ में ही है।" यह सुख तभी है जब

पति–पत्नी के गुण कर्म स्वभाव परस्पर मिलते हों। ऐसे दम्पत्ति ही एक दूसरे की भावना का सम्मान कर सकते हैं। महर्षि दयानन्द की मान्यता थी कि भले ही लड़का–लड़की कुँवारे रह जाएं किन्तु विपरीत गुण कर्म स्वभाव वालों का परस्पर विवाह न हो। गृहस्थ में सुख का आधार यही अनुकूल गुण कर्म स्वभाव ही हैं।

गृहस्थ में अनेक सम्बन्धों से युक्त होकर गृहस्थी लोग रहते हैं। ये सम्बन्ध ऐसे हैं, जैसे अनेक पुष्पों का एक गुच्छा। परिवार रूपी गुच्छे में गूंथे गये सम्बन्धों में मधुरता बनी रहने के लिए आवश्यक है परिवार के सभी सदस्य परस्पर–प्रेम सहयोग के साथ अपने–अपने कर्तव्य कर्मो को करें। किसी भी कर्म को किये जाने हेतु उसका ठीक–ठीक ज्ञान भी होना आवश्यक है और जब विशेष कर्म अर्थात् उत्तरदायित्वों के निर्वहन की बात आती है तो विशेष ज्ञान की आवश्यकता होती है। हमें यह विद्या वेद से प्राप्त होती है, किंतु जब किसी समाज का साहित्य और इतिहास नष्ट और भ्रष्ट कर दिया जाता है, तो फिर रह ही क्या जाता है? पण्डितों में अज्ञान छा जाता है। समाज में रूढ़ियां बन जाती हैं, माताओं में आत्म विश्वास नहीं रहता। वे आत्मविश्वासी सन्तान उत्पन्न नहीं कर पाती। आज हमें अपनी संस्कृति की रक्षा के लिए जो भी साहित्य शेष है, उस पर अनुसंधान करना हमारा कर्तव्य है। मानव जीवन के लिए आवश्यक वैदिक ज्ञान अपने परिवार और वर्तमान शिक्षा प्रणाली से न मिलने से आज का मानव पारिवारिक सम्बन्धों की मधुरता खोकर दुःखी, संतप्त, नारकीय जीवन जी रहा है। परस्पर अविश्वास, द्वेषभाव, अन्तर्कलह से आज परिवार टूट–बिखर रहे हैं। परिवार कुसंस्कारों के केन्द्र बन गये हैं, जिसके कारण संयुक्त परिवार टूट रहे हैं। उनके स्थान पर एकाकी परिवार का प्रचलन बढ़ रहा है। आधुनिक शिक्षा दीक्षा, वेशभूषा दूषित आचार विचार, दूषित खानपान के कारण माताएं राम, कृष्ण के स्थान पर दैत्यों को उत्पन्न कर रही हैं। राष्ट्र में वृद्ध और ज्येष्ठ व्यक्तियों के प्रति सम्मान समाप्त होने के कारण तलाक की

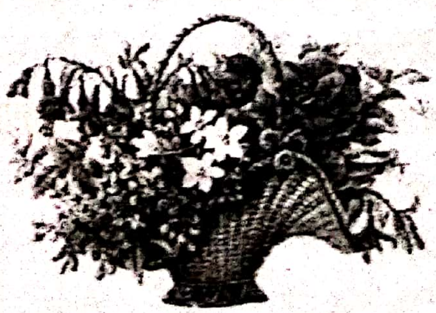
परम्पराए प्रारम्भ हो गयी हैं। जहां भौतिक विकास हुआ, वहीं आध्यात्मिकता का विनाश हुआ।

इस पुस्तक का उद्देश्य गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने वाले नवदम्पत्ति गृहस्थ जीवन की महत्ता जानें तथा अपने कर्तव्य बोध को भी भली भाँति जान सकें। वे अपना जीवन सुख-शान्तिमय सात्विक बनाकर उत्तम सन्तान को जन्म देकर सुसन्तान का निर्माण कर सकें। इस हेतु ब्रह्मचारी कृष्ण दत्त जी के प्रवचनों से हमारी वैदिक परम्पराओं की महान माताओं का वर्णन इस पुस्तक में दिया गया है। जिन्होंने महान सन्तानों को जन्म दिया। जिनसे प्रेरणा लेकर इस सर्वोत्कृष्ट गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने वाले वैदिक संस्कारों से युक्त दम्पत्ति राष्ट्र को भगवान् राम, भगवान् कृष्ण, युधिष्ठिर, अर्जुन जैसी सन्तान को जन्म दे सकेंगे। इनकी माताओं के साथ वैदिक काल की माताएं महापुरुषों और ऋषियों को उत्पन्न कैसे करती थीं इसका वर्णन किया गया है।

यह पुस्तक स्वाध्यायशील दम्पत्ति के गृह को स्वर्गाश्रम और सन्तानों को श्रेष्ठ बनाने का मार्ग प्रशस्त करेगी, इस आशा से यह विद्वजनों के समक्ष प्रस्तुत है। यह पुस्तक पुत्री आयुष्मती श्रुति एवं चिरंजीवी राहुल के विवाह पर उन्हें समर्पित है।

वैदिककालीन महान विदुषियाँ

विषय-सूची



कन्या द्वारा क्रमशः देव–पितृ–पति लोक की प्राप्ति

एक समय महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि से ब्रह्मचारियों ने कहा कि साहित्य में कन्या याग का वर्णन आया है और कन्या याग में भी लोकों का वर्णन आया है। मानों जैसे "कन्या पितरो बह्म लोकाः।" वेद का मंत्र कहता है कि कन्या जब इस संसार में आती है तो सबसे प्रथम वह देव लोक में रहती है। वह देव लोक क्या है ?

देवलोक–

जब बालक शिशु गर्भ अवस्था में होता है मानो अबोध होता है तब वह मानों देखो, देव लोक में रहता है। उसकी रक्षा देवता करते हैं। मानव उसकी रक्षा नहीं करता। उसे संसार का बोध भी नहीं है। परन्तु देखो, उस समय उसे संसार का बोध कौन कर रहा है? वे जो देवता है, जो शरीर में विद्यमान है। जो उसकी प्रवृत्तियों को एक रूप में कटिबद्ध कर देते हैं। जब बाल्य गर्भ होता है तो बाल्य का कौन देवता रक्षक है? बेटा! देखों, वहां सूर्य प्रकाश देता है, अग्नि उसे उष्णता देती रहती है, चन्द्रमा अमृत देता रहता है। इसी प्रकार बाल्यकाल में भी उन्हीं के संरक्षण में बेटा! देखो उसे उस काल में न तो नग्नता का ज्ञान होता है, न उसे वस्त्र का ज्ञान होता है वह देखो, जैसे माता के गर्भ में पनपा है, ऐसे ही वह पृथ्वी माता की गोद में आकर के उसके गर्भ में आकर के पनपता है। बेटा। अपने में मौन हो जाता है मानो उसी को हमारे यहां देवलोक कहते हैं। बेटा ! लोक कहते हैं निवास–स्थली को और मुनिवरों। जहां देवता वास करते हैं उसको देवलोक कहते है। जहां देव प्रवृत्ति बनी रहती है, जिस भी काल में मानव की देव प्रवृत्ति बन जाती है वह मानो देखो, देवताओं का लोक कहलाता है।

पितर लोक–

इसके पश्चात् बेटा ! वही कन्या जब देवलोक से उपराम

होती है तो मानो संसार के क्षेत्रों में परिणत हो जाती है तो वह पितरलोक कहलाता है। वे पितर कौन हैं? बेटा जो उसकी रक्षा करते हैं। मेरे प्यारे ! देखो, वे पितर, जो गृह में माता पिता के रूप में रहते हैं। विद्यालयों में आचार्यों के रूप में रहते हैं। मानो देखों, वे उसके पितर कहलाते हैं। उन्हीं की संरक्षणता में, उसके जीवन की धाराओं का प्रायः जन्म होता रहता है। वह ही मानो देखो, उसका पितर लोक कहलाता है। पितर का अभिप्राय क्या है? मानो देखो, आचार्य पितर हैं। माता–पिता पितर हैं। मानो देखो, जो उससे आयु में प्रबल है वह पितर कहलाते हैं। वह कन्या उनकी संरक्षणता में रहती है। उस काल में कन्या रक्षा का दायित्व पितरों के ऊपर हो जाता है "पितर लोकं भविते ब्रह्माः।" वेद का मन्त्र कहता है कि पितर कन्या के जीवन में एक मौलिकता बन कर रहते हैं। विद्यालय में आचार्य के संरक्षण में रहती है जहां आचार्य उसे विद्या का अध्यापन कराते हुए त्यागी–तपस्वी बना देता है। यह संसार जहां तुम विद्यमान हो यह पितर लोक है उसे बोध करा देता है। पितरों के लोक में बेटा जब वह रहने लगती है तो पितरों की प्रतिभा उसके समीप आने लगती है यह पितर लोक मानों आचार्यो का लोक भी है। आचार्य कुल में जब प्रवेश करती है तो वे उसे अपने गर्भ में धारण करके मानो देखो कन्या को प्रतिभाशाली बना देते हैं। विद्यालय में त्याग पूर्वक अध्यापन हो रहा है यह उसका पितर लोक है गृह भी पितर लोक है विद्यालय भी पितर लोक है जिसकी संरक्षणता में उनका पालन हो रहा है। वे अपने में भव्यता को प्राप्त हो रही है वेद का मंत्र ये कहता है, "कन्यां पितृलोकं ब्रह्माः वाचं ब्रह्मेः देवत्वां लोकाः" वेद के एक–एक मंत्र को लेकर ऋषि मुनियों ने बड़ा अनूठा अनुसंधान किया। उसका कन्या याग द्वारा अपने पितरों में पालन हो रहा है। पितरजन मानो देखो, उसकी रक्षा कर रहे हैं और पितरों का ज्ञान कौन करा देता है जो जड़ देवता है, जो शरीरों में क्रियाकलाप कर रहे हैं, उनका बोध कौन कराता है? बेटा। देखो, चैतन्य देवता, आचार्य कराता है। आचार्य कहता है, हे देवत्वं। हे मम ब्रहेः हम तुम्हारे पितृभिः लोकामः"

आओ, पितर याग करेगें। वह पितरलोक में प्रवेश हो करके पितरों का याग, पितरों की सेवा करें। यह पितरलोक कहलाता है।

पतिलोक–

वेद का वाक् कहता है ''कुलेभ्यो ब्रह्मा: कुलेभ्यो: पतस्य कृते प्रह्े व्रांत वाचन्न्मं ब्रह्मा:''। पितर लोक से मानो उपराम होते ही मेरे प्यारे ! वह ''कुलेभ्यो: नम:'' कुल का परिवर्तन करके वह पतिलोक को प्राप्त हो जाती है। वही कन्या जो देवलोक में थी, उसके पश्चात पितर लोक में थी, अब पति लोक में चली गई। मानो देखो, पति कहते हैं, रक्षक को। वास्तव में देखो, पति की बड़ी विस्तृत व्याख्या हमारे वैदिक साहित्य में आती रहती है।.हमारा वैदिक साहित्य देखो, पतिलोक की विवेचना करता है कि सबसे प्रथम तो मानो देखो, अपनेपन में जब कन्या यह स्वीकार कर लेती हैं कि मैं पति की अधिपत्यवादी बनूं। तो मानो देखो, वह पति कुल में अपने को प्रवेश करा देती हैं। तो यह उसकी लौकिक विवेचना हुई कि उसका शासन मानो परिवर्तन हो गया है, वह अब पति लोक को प्राप्त हो गई हैं। पति के गृह में मानो अपना वास कर लिया। वेद का ऋषि इसकी एक बड़ी विचित्र व्याख्या करता है। वह कहता है ''कुल्प प्रमाणं ब्रह्मं कन्या देवो ब्रहे: पतिलोकश्चमम्'' मानो देखो परमपिता परमात्मा सबका पति है। वह सबका स्वामित्व करने वाला है। मानो देखो वह पति है वह कैसा अनुपम पति है? कन्या लौकिक पति कुल को प्राप्त हो गई है पति लोक में प्रवेश कर गई है तो उसके शासन का परिवर्तन हो गया। मानो व्यवहारिक जो जगत है, उसमें आदान और प्रदान हो गया है। जब आदान प्रदान हुआ तो उसके पश्चात् मानो देखो, वही पति उसमें मानो देखो, शिशु की स्थापना करता है। वह पितर बनने की इच्छा प्रकट करता है तो, वह जो पितर बन रहा है और वह जो परमपिता परमात्मा पितर है वह कैसा अनुपम है ? मेरे प्यारे! परमात्मा एक–एक परमाणु को, एक–एक अणु को सुगठित कर रहा है। मेरे प्यारे! वह साधारण पितर इन अलौकिक प्रक्रियाओं को नही जानता। माना उन प्रक्रियाओं को मेरा प्रभु जानता है, जो

निर्माणवेत्ता है, जो विश्वकर्मा बना हुआ है। वह कैसा विज्ञानमयी स्वरूप कहलाता है परन्तु साधारण व्यावहारिक पतियों को इसका ज्ञान नहीं होता। मानो वह परमपिता परमात्मा शिशु की रचना करता है। पिता ब्रह्मेः जब वह पितर बनने की इच्छा प्रकट करता है, तो अपनी देवी से कहता है– देवी! अब हम पितर याग में प्रवेश कर रहे हैं। वो उस समय वे पितर याग करते हैं, परन्तु उसके परमाणुओं की जो क्रियाएँ हैं, वे कैसे होती है इसको न पति जानता है, न पत्नी जानती है। वह जो मेरा प्यारा प्रभु है वह जो संसार का नियन्ता है अथवा संसार का पति बन रक्षा करने वाला है, वही जानता है। वह माता के गर्भस्थल में परमाणु का आदान–प्रदान करता हुआ उनको सुगठित कर देता है, उनका मिलान कर देता है। वह विश्वकर्मा बनकर के रचना कर रहा है और यह कैसी रचना है? माता के गर्भस्थल में माता के मस्तिष्क से लेकर के, पितरों के मस्तिष्क से लेकर के जिन परमाणुओं का प्रेक्षण हुआ है, मानो उन्हीं परमाणुओं से उनकी प्रवृत्तियों का निर्माण करा देता है। मेरा प्रभु कितना बैज्ञानिक है? बेटा! वह कितना विश्वकर्मा है? यदि माता मानो यौगिक बन गयी, तो यौगिक परमाणुओं से बालक का निर्माण कर देता है। यदि माता और पितर दोनों मानो देखो, राष्ट्रवादी बन गये हैं, तो पुत्र भी राष्ट्रीय अंकुरों से निर्माणित हो जाता है। तो मेरे प्यारे! इसको कोई नहीं जानता। मेरा प्रभु ही जानता है। मेरा देव ही जानता है जो मेरा महापिता है, जो संसार का नियन्ता है। माता के गर्भस्थल में विद्यमान हो करके बेटा! परमाणुओं का आदान–प्रदान करता रहता है। वे परमाणु मानो अपनी–अपनी स्थिलियों पर निर्मित होकर के सर्वत्र ब्रह्माण्ड के परमणु उसमें निहित हो जाते हैं। मेरा प्रभु वह कितना महान पति है, कितना वह वैज्ञानिक है।

याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा– बेटा ! पितर लोक और पति लोक को प्राप्त होने वाली कन्या बेटा! अपने पति के अप्रतम देखो पति कुलेभ्यो मानो देखो, उस कुल को प्राप्त हो जाती है। उस लोक में प्रवेश करके उसको अपना गृह लोक बना लेती है। पवित्र लोक

बनाकर मे मानो देखो, वह उसका पतिलोक ही नहीं रह जाता। उस पर उसका स्वयं अधिकार भी बन जाता है।

मानो देखो, इसीलिए माता मदालसा का तो यह कथन हो गया था कि हे संसार के पतियो! तुम मानो देखो, इतनी प्रतिभा नहीं जानते, जितना वह मेरा स्वामी प्रभु जानता है। वह कैसे निर्माण करता है? मानो वह कैसे ब्रह्मवेत्ता शिशु का निर्माण करता है, गर्भ स्थल में, इसको तू नहीं जानता। मानो देखो, परमात्मा जानता है। मानो देखो, उसकी प्रतिभा को लेकर के माता के लिए प्रत्येक नौ माह में, नौ–नौ प्रकार का अन्नादि और नौ प्रकार का आहार बन जाता है। प्रभु उन कणों को लेकर के उसके शिशु–निर्माण करता है। उसी प्रकार की वृत्तियां बन जाती हैं। मेरे प्यारे! देखो, मदालसा ने कहा शिशु का प्रवेश गर्भ में जब हो, तो प्रभु की गोद में चली जाओ। प्रत्येक मेरी पुत्रियों का कर्तव्य है कि वह गर्भ अवस्था में प्रभु की गोद में चली जाए, जिससे संसार में ब्रह्मवेत्ता और बुद्धिजीवी प्राणियों का जन्म होता रहे। ऐसा मानो देखो, माता मदालसा ने कहा है कि मानो जहां गर्भ में शिशु का प्रवेश हुआ, प्रभु का चिन्तन करना चाहिए। मानो देखो, शुद्ध और बुद्ध की विवेचना करनी चाहिए। संसार की कोई वस्तु नष्ट नहीं होती, किसी वस्तु का विनाश नहीं होता। जब विनाश नहीं होता तो उन्हीं की विवेचना करना उसका कर्तव्य बन जाता है। जन्म के पश्चात् जब शिशु माता की लोरियों का पान करने लगा, तो मानो देखो, उस समय माता वेदमंत्रों की व्याख्या बाल्य के कर्णों में प्रवेश कराती है कि ये संसार तो कुछ है ही नहीं, ये संसार तो निस्सार है, ये संसार तो अपवाद वृत्तियों में रत होता रहता है। इस प्रकार की विवेचना माता बाल्य से करती रहती। प्रत्येक अंकुरों में बेटा! ज्ञान और विज्ञान को परिणत कराती रहती। तो मुनिवरों देखो, उसी तपस्या का फल ये हुआ कि माता मदालसा का पॉच वर्ष का ब्रह्मवेता पुत्र बन गया, तपस्वी बन गया, बुद्धिजीवी बन गया, प्रभु का गुणगान गाने वाला बन गया। मेरे प्यारे ! देखो संसार में एक विचित्र बन गया।

विवाह–संस्कार का उद्देश्य

संसार में विवाह संस्कार होने का क्या उद्देश्य है? वेद कहता है कि एक ही अभिप्राय है कि पति और पत्नी को विवेकी सन्तान उत्पन्न करना है, वेद के अनुकूल गृहस्थ नियमों पर चलना है। उससे विवेक, ब्रह्मचर्यता और बलिष्ठता आती है। आज हमें जानना चाहिए कि रोग तब आता है, जब शरीर में कुछ क्षीणता हो जाती है। जब क्षीणता नहीं होती, तब रोग नहीं आता। माता और पुत्र दोनों को विवेकी बनना है। जब माता का गर्भ स्थापन हो जाए, तो माता गर्भाशय में ही बाल्य को ऐसी शिक्षा दे, जिससे वह बालक संसार में अमर हो जाए। उसके लिए गायत्री छन्दों का पाठ, देवपूजा, ब्रह्मचिन्तन, योगाभ्यास नित्य करना माता का कर्तव्य है। जब बाल्य का जन्म हो जाए, तो आनन्दित हो करके कहे आ मेरे भोले पुत्र! तू मेरी लोरियों के आनन्द को प्राप्त कर। बालक माता से ज्ञान ले अपने जीवन को बनाता है। जब वह युवा हो जाता है उसके पश्चात् माता–पिता की सेवा करना पुत्र का कर्तव्य है। वह विवेक द्वारा होनी चाहिए। जब माता–पिता और संतान विवेकी बनेंगे, तो यह गृहस्थ क्यों न स्वर्ग बनेगा। जब यहां ऋषि–परंपरा अपनायी जाएगी, तो राष्ट्र, समाज स्वर्गमय हो जाएगा। हे मेरी भोली माता! तू कितनी पवित्र है, परमात्मा ने तुझे अमूल्यताएं दी हैं। आज इन अमूल्यताओं को शान्त न कर। आज संसार में केवल तेरा जीवन ऐसा है, जो संसार को पवित्र बना सकता है। तू संसार में एक महान बालक को उत्पन्न कर। आज तू केवल भगवान् राम जैसा वीर बालक उत्पन्न कर दे।दुर्गतेः पितरौ रक्षिते स पुत्रः जो माता–पिता को दुखों से, दुर्गति से बचाता है, वही पुत्र है।

पुत्रेष्टि याग

माता के विद्यालय में गर्भावस्था से पांच वर्ष तक शिक्षा –

हमारे यहां माता को सर्वोच्च कहा गया है क्योंकि उसके गर्भ से हमारा जन्म होता है। चाहे ऋषि मुनि हो, चाहे महापुरूष और चाहे दुष्ट सभी का जन्म माताओं के गर्भ से होता है। हे पवित्र मां तू कितनी ऊंची है तेरा गर्भाशय किस प्रकार का होगा। जब तू यहां कणाद, गौतम, राम कृष्ण आदि को जन्म देती है। उस समय तेरे हृदय की उदारता किस प्रकार की होगी ? यह विचार में नहीं आता। क्योंकि हे माता जब प्रभु तेरे गर्भस्थल में पुत्र की रचना करते हैं तो उसके निर्माण के लिए जो सूक्ष्म–सूक्ष्म यन्त्र बनाते हैं यह यन्त्र तेरी भावना से बनते हैं। परमात्मा इन यन्त्रों को बनाने में जो द्रव्य लेता है वह तेरे से लेता है। स्वयं पुत्र, पुत्री बनाने की शक्ति तुझमें नहीं है। उन्हें रचने वाला प्रभु है। माता जितने ऊंचे तेरे भाव होंगे, उतनी ऊंचे तेरे गर्भ से उत्पन्न होने वाली सन्तान के भाव होंगे। परंतु यदि तेरे विचार और तेरा भोजन दूषित होगा। तेरी रसाना (जिव्हा) में स्वादन होगा, यदि तू मांस का भक्षण करेगी, तो उसके परमाणु तमो गुणी होंगे। तब तेरे पुत्र–पुत्री भी तमोगुणी उत्पन्न होंगे। यदि उस काल में तू रजोगुणी भोजन करती है, तो उससे तेरे विचार रजोगुणी होंगे तथा पुत्र–पुत्री रजोगुणी उत्पन्न होंगे। तेरे भोजन से, विचारों से प्रभु जरायुज (शिशु) की रचना करते हैं। मेरी पवित्र माता तेरे श्रृंगार पर तेरी मानवीयता पर उस काल में आक्रमण होता है जब तू अपनी मानवीयता और वास्तविक श्रंगार को त्याग देती है।

मेरे प्यारे देखो! माता के गर्भ में बाल्य मानो ऐसे विश्वविद्यालय में अध्ययन कर रहा है, जिस विद्यालय में अध्ययन करने वाले के प्रत्येक शब्द उसके अन्तःकरण में अंकित हो जाते हैं। माता अपने बाल्य को गर्भ में शिक्षा देकर ब्रह्मवेता भी बना सकती है, जो कोई विश्व का विद्यालय नहीं बना सकता। काई आचार्य ऐसा नहीं, जो

मानो माता द्वारा दिये गर्भ के संस्कारों को बाल्य के अन्तःकरण से दूर कर सके। माता बालक की सर्वप्रथम शिक्षक बन उसे ऊर्ध्वा में गमन करा सकती है। वह सबसे महान शिक्षक होती है। जब माताएं पवित्रता में परिणत हो जाती हैं, तो समाज अपने में पवित्र बन जाता है। जिस काल में मुनिवरो देखो! माता तपस्वी नहीं होती, बाल्य–बालिकाओं को गर्भकाल से ऊर्ध्वा में उपदेश नहीं देती, मानो देखो, उनके माता–पिता सदैव रुदन करते रहते हैं, बाल्य भी रुदन करते हैं। ज्ञानं से वे शून्य हो जाते हैं। उनके अन्दर शान्ति की स्थापना नहीं हो पाती।

यदि राष्ट्र और समाज को ऊंचा बनाना है, तो गर्भावस्था से लेकर पांच वर्ष तक माता का विद्यालय पवित्र बना रहे। माता पुराहित बन बाल्य को शिक्षा देने वाली हो और उसमें ब्रह्मज्ञान भी हो, सुन्दर कर्म और व्यवहार हो। जब तक ये तीनों साथ–साथ गमन नहीं करेंगे, तब तक मानव का उत्थान नहीं होगा।

माता अपने प्यारे पुत्रों की वसुन्धरा कहलाती है, उन्हें अपने में धारण करने वाली है। देखो, वह धुनर्विद्या से, आयुर्वेद की विद्या से बाल्य को, मानो पारंगत बना देती है और वह कहा करती है कि बाल्य आओ। यदि तुम ब्रह्मवेता बनना चाहते हो तो तुम्हें ब्रह्म के आंगन में ले जाऊं जिससे तुम्हारी पिपासा वहां शान्त हो। यदि तुम संसार के वैभव, संसार के कार्यो में रत रहना चाहते हो तो मानो उसमें कौन से मार्ग को अपनाना चाहते हो? तो माता के इन शब्दों को पान करने वाला ब्रह्मचारी कहता है कि माता जैसी तुम्हारी इच्छा। जैसी प्रेरणा तुमसे मुझे प्राप्त होगी, उसी आधार पर अपने कार्य में रह रहना चाहता हूं। जब बाल्य यह कहता है तब माता उसे आचार्य के कुलों में ले जाती है और कहती है कि बाल्य तुम धनुर्विद्या में पारंगत हो जाओ।

माता कौशल्या

माता कौशल्या के गुरू का नाम तत्व मुनि महाराज था। उनकी आयु 284 वर्ष की थी, वह अखण्ड ब्रह्मचारी थे। एक समय शिक्षा अध्ययन करते–करते जब कौशल्या दर्शनों का अध्ययन कर रही थीं, तो उनके मन में एक विचार आया, जो उन्होंने गुरु से प्रकट किया कि "हे गुरुदेव! मैं गृहस्थाश्रम में परिणित नहीं होना चाहती।" ऋषि ने कहा कि पुत्री! जैसी तुम्हारी इच्छा। कौशल्या ने जब और अधिक अध्ययन किया तो एक समय रात्रि में अपने गुरू के द्वार पर पहुँची और उनके चरणों को छूकर बोली कि प्रभु! मेरी इच्छा है कि मैं अपने गर्भस्थल से एक ऊंचे और महान् बालक को जन्म दूं। उस समय गुरू ने पुनः कहा कि पुत्री जैसी तुम्हारी इच्छा।

विवाह संस्कार–

कौशल्या का यह संकल्प कि एक ऐसे महान् बालक को जन्म दूंगी जो संसार से आततायियों का नाश करके धर्म की पताका फहरायेगा, ऋषि–मुनियों में यह चर्चा का विषय बन गया और यह वार्ता महाराजा रावण को भी प्रतीत हो गई कि कौशल्या के गर्भ से तेरी मृत्यु के मूल का जन्म होगा। अतः रावण ने कौशल देश के राजा से कहा कि अपनी पुत्री हमको अर्पित करो। हम इससे संस्कार तो नहीं करायेंगे, पर इस कन्या को बन्दी करके रखेंगे। कौशलनरेश ने अपनी पुत्री कौशल्या को रावण को दे दिया और रावण ने उस कन्या को, समुद्र के मध्य में एक टापू पर दुर्ग बनाकर यन्त्रों में ओत–प्रोत कर दिया।

राजा दशरथ को भी यह भेद पता चल गया। अतः जब वे रानी कैकयी के साथ कुबेर को युद्ध में परास्त कर लौट रहे थे तो समुद्र के बीच में बने दुर्ग में अपने वाहन से पहुँचे और वहां से ऐसे यन्त्रों को लाए, जिनमें कौशल्या को बन्द किया हुआ था। इस प्रकार दशरथ ने कौशल्या माता की रावण के बन्दीगृह से मुक्ति कराई तथा

कुछ समय के पश्चात् कौशल्या का संस्कार राजा दशराथ के साथ हो गया और संस्कार होने के पश्चात् वह गृह में प्रविष्ट हो गई। रघु परम्परा के अयोध्या राष्ट्र गृह में जा पहुँची।

राष्ट्र का अन्न न ग्रहण करने का संकल्प—

कौशल्या का तप बड़ा अद्वितीय कहा जाता है। कौशल्या का यह नियम था कि वे स्वयं कला—कौशल करती और उसके द्वारा जो द्रव्य आता, उसको स्वयं ग्रहण करती। उन्होंने संकल्प धारण किया कि मैं गर्भावस्था के काल में राष्ट्र का कोई अन्न ग्रहण करना नहीं चाहती क्योंकि राष्ट्र में रहकर ऊंचे बालक को उसी काल में जन्म दे सकती हूं जब मेरे मन की प्रवृत्तियां पुरूषार्थी होगी, महान् होगी, पवित्र होगीं और अन्न की जो प्रतिभा है वह ऊंची होगी क्योंकि अन्न से मन की प्रतिभा उत्पन्न होती है।

कुछ काल के पश्चात् श्रृंगी ऋषि के द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ किया गया। पुत्रेष्टि यज्ञ के पश्चात् माता कौशल्या का यह नियम था कि वे स्वयं कला—कौशल करती और उसके द्वारा जो द्रव्य आता उसे ग्रहण करके सन्तुष्ट रहतीं। जब राजा दशरथ को यह ज्ञान हुआ कि कौशल्या जी राष्ट्र का कोई अन्न ग्रहण नहीं करतीं हैं तो वे एक दिन वशिष्ठ मुनि के आश्रम जा पहुंचे। वहा महर्षि वशिष्ठ तथा माता अरुन्धति दोनों विद्यमान थे। राजा दशरथ ने दोनों के चरणों को छूकर प्रणाम किया। ऋषि ने कहा कि कहिए राजन्! आज आपका आगमन क्यों हुआ? उन्होंने कहा कि महाराज! आपके आश्रम में मेरा आगमन इसलिए हुआ कि मैं आपको अपने गृह में प्रविष्ट कराना चाहता हूं। माता अरुन्धति ने कहा कि कार्य क्या है ? उन्होंने कहा कि हे माता ! कार्य यह है कि कौशल्या, जो मेरे गृह में है, उत्तम पत्नी है, परन्तु वह राष्ट्र का कोई अन्न ग्रहण नहीं करती। मेरी इच्छा है कि आप मेरी पत्नी को ऊंची शिक्षा प्रदान कीजिए।

महर्षि वशिष्ठ, माता अरुन्धति तथा महाराजा दशरथ तीनों भ्रमण करते हुए राजगृह में प्रविष्ट हुए। कौशल्या जी ने तीनों को

तीन आसन देकर, उनके चरणों को छू करके माता अरुन्धति और वशिष्ठ से कहा कि कहिए भगवन्! आज मेरे गृह आश्रम में आपके आने का क्या कारण है ? माता अरुन्धति ने कहा कि देवी ! हमने यह श्रवण किया है कि तुम राष्ट्र का अन्न ग्रहण नहीं करती हो।

कौशल्या : हां भगवन् ! मैं राष्ट्र का कोई अन्न ग्रहण नहीं करती।

अरुन्धति :क्यों नहीं करतीं ?

कौशल्या : हे माता ! मेरी इच्छा नहीं होती।

अरुन्धति :क्यों नहीं होती, क्या कारण है ?

कौशल्या : कारण यह है कि मैंने गुरूदेव के द्वारा एक संकल्प किया था कि मैं अपने गर्भस्थल से ऐसे पवित्र और महान् बालक को जन्म देना चाहती हूं जिसकी राष्ट्र क्या, लोक–परलोक दोनों में उसकी प्रतिभा हो, वह चरित्रवान हो, राष्ट्र और पर्वत–शैय्या दोनों उसके लिए एक तुल्य हो।

वशिष्ठ : राष्ट्र का अन्न क्यों नहीं ग्रहण करना चाहतीं ?

कौशल्या :यदि भगवन् ! मैं राष्ट्र का अन्न ग्रहण करने लगूंगी तो मेरे गर्भस्थल से राजोगुणी बालक का जन्म होगा, महान् बालक का जन्म नहीं हो सकता। क्योंकि राष्ट्र का जो अन्न होता है, वह रजोगुण और तमोगुण से बना होता है। मैं इस अन्न को इसलिए नहीं ग्रहण करना चाहती कि उससे मेरे मन की प्रवृत्तियों की तरंग उस प्रकार की न बन सकेगी, जैसी मैं बनाना चाहती हूं।

वशिष्ठ मुनि ने यह श्रवण किया, वे मनोवैज्ञानिक और बुद्धिमान तो थे ही, उन्होंने विचार–विनिमय किया और राजा दशरथ से कहा, बोलो दशरथ जी, क्या कहना चाहते हो? दशरथ ने कहा कि महाराज! मेरे राष्ट्र में पाप का अन्न नहीं आता। कौशल्या जी ने कहा कि हे राजन् ! राष्ट्र का पालन रजोगुण से होता है, क्योंकि राजा जब बनता है और राष्ट्रीय वस्त्रों को धारण करता है तो उसके राजसिक विचार होते हैं, न्याय के विचार होते हैं परन्तु जो वास्तविक न्याय है वह प्रभु करते हैं। जहां तक राजा का न्याय होता है, जो अपराधी

राजा के राष्ट्र में अपराध करके आता है वह जो अपराधी है वह रजोगुण और तमोगुण से सना हुआ होता है और जब उसका न्याय किया जाता है तो उस राजा की प्रवृत्तियों भी रजोगुण एवम् तमोगुण से सनी हुई होती है। यदि रजोगुण और तमोगुण से सनी प्रवृत्तियां न हो तो आप किसी भी काल में अपराधी का न्याय नहीं कर पाओगें। जब उन्होंने ऐसा उच्चारण किया तो राजा मौन हो गए। कौशल्या जी ने आगे कहा कि हे राजन्। तुम्हारे राष्ट्र का जो द्रव्य और अन्न है, वह भी रजोगुण से सना हुआ होता है, इसलिए मैं उसे ग्रहण नहीं करना चाहती। यह सुनकर तीनों मौन हो गए। महर्षि वशिष्ठ ने राजा दशरथ से कहा कि जो स्वयं कला–कौशल करके कौशल्या द्रव्यपान करती हैं उससे तुम्हारी कोई हानि नहीं है। तीनों ने अपने स्थान को प्रस्थान किया। माता कौशल्या का कार्यक्रम पूर्ववत् चलता रहा। उसी कौशल्या जी से भगवान राम का जन्म हुआ।

रघु के पुत्र का नाम अज था। अज में कुछ त्रुटियां आई। वह राष्ट्र के ऐश्वर्य में संलग्न हो गए। अज के पुत्र का नाम दशरथ था। उनके तीन पत्नियां थी, उन्हीं में संलग्न रहते और वह भी ऐश्वर्य में इतना संलग्न हो गये कि उन्हें यह विचार न रहता कि यहां तक मेरे राष्ट्र की सीमा है। लंका के राजा रावण ने महाराजा रघु के चक्रवर्ती साम्राज्य पर अपना आधिपत्य जमा लिया था। राजा दशरथ का इसी पृथ्वी पर सूक्ष्म सा राज्य अयोध्या में रह गया था, जहां रावण का राज्य नहीं था। इसलिए माता कौशल्या को भगवान राम को जन्म देने की आवश्यकता हुई। क्योंकि माता कौशल्या यह जानती थी कि मेरा पति तो ऐश्वर्य में आ गया है और राष्ट्र का उत्थान होना चाहिए। वशिष्ठ मुनि और अरुन्धति भी यही चाहते थे क्योंकि रावण का राज्य सुन्दर नहीं था उसमें दुराचार की मात्रा अधिक थी और चरित्र नाम की कोई वस्तु नहीं थी।

गर्भावस्था में माता कौशल्या तपस्या में परिणित हो गई, अपने जीवन को उन्होंने क्रियात्मक बनाना प्रारम्भ किया। वह प्रातः काल

समिधाओं को लेकर जब अग्न्याधान करती थी तो कहती थीं कि हे अग्नेय। तू प्रकाश है, तू मेरे अन्तःकरण का प्रकाश है। हे अग्नेय! तेरी ही ज्योति उर्ध्वा में रमण करती है। हे अग्नेय ! तू सप्त जिह्वा वाली है, प्रत्येक जिह्वा से तू संसार का कल्याण करती है। माता कौशल्या उस अग्नि की आराधाना करती रहती थी। मध्याह्न काल आता तो कला–कौशल करती थीं। उसके बदले में जो द्रव्य आता था, उससे अपने उदर की पूर्ति किया करती। राजा दशरथ ने बहुत प्रयास किया कि राजलक्ष्मी राष्ट्र के अन्न को ग्रहण करने लगे, तो माता कौशल्या कहती थी कि हे राजन ! मैं राष्ट्र का अन्न नहीं ग्रहण कर सकती क्योंकि मैंने आचार्यो के समीप, बुद्धिमानों के समीए अग्नि को साक्षी करके मैंने प्रतिज्ञा की थी और वह प्रतिज्ञा क्या कि मैं अपने जीवन को तपस्वी बनाऊंगी और मेरे गर्भ से जन्म लेने वाला बालक भी तपस्याचर होना चाहिए। राजा की एकाकी वार्ता को उन्होंने नहीं स्वीकार किया।

जब मुझे वह काल स्मरण आता है तो प्रायः ऐसा दृष्टिपात आता है जैसे कोई सन्यासनी यज्ञशाला में विद्यमान है। वह प्रातःकालीन अग्नयाध्यान करती। सूर्य की किरणों के साथ अपने नेत्रों में ज्योति का प्रकाश अपने में ग्रहण करती थी। जब बाल्य गर्भ से पृथक हो गया तो माता कौशल्या प्रातःकाल याग करने लगी। बालक को लोरियां देती रहती थी और उनके द्वारा ब्रह्मवर्चोसि का पठन–पाठन चलता रहता था। आत्मा तू वर्चोसि है, अग्नेय है, मानो अग्न्याध्यान हो रहा है। समिधा के द्वारा अग्नि का चयन कर रही हैं उस अग्नि के चयन को कौन कर रहा है ? अग्नि का चयन माता कौशल्या कर रही है, बालक दृष्टिपात कर रहा है। हे मेरी मां ! तू कितनी भोली है, तू अपने जीवन को कितना कर्मठ बना सकती है, कितना प्रतिष्ठित बना सकती है। अपने जीवन की धारा महान् बन सकती है।

माता सीता

शिक्षा–दीक्षा

जनक कन्या सीता, राज पुरोहित स्वाति मुनि महाराज के द्वारा वेदों व धनुर्विद्या का अध्ययन करती थी।

तपस्वी जीवन

माता सीता का जीवन आपत्तिदायक रहा। वनवास में वह जहां कहीं सिंहराज से वार्ता कर जीवन की रक्षा कर रही थी, वहीं कहीं अपने चरित्र और मानवीयता की रक्षा कर रही हैं। उनके जीवन में एक बड़ा कौतुक होता रहा। परन्तु जब वनवास के पश्चात् अयोध्या में आ गयीं और माता के गर्भस्थल में जब गर्भ की आवृत्तियां प्राप्त हो गयीं। तब भगवान राम ने यह विचार किया कि मेरे गृह में विवेकी बालक का जन्म हो। तो उन्होंने लक्ष्मण से कहा कि हे लक्ष्मण! तुम सीता को महर्षि बाल्मीकि के आश्रम में पहुंचाकर आओ, वहीं इनके गर्भ का पोषण होना चाहिए। इनके गर्भ से एक महान तपस्वी का जन्म होना चाहिए। नदी का तट है, वहां पर सीता स्वच्छ वायुमण्डल में बालक को जन्म देगी तो राष्ट्र का कल्याण होगा। राम की आज्ञा थी, लक्ष्मण सीता को लेकर बाल्मीकि आश्रम में गए। भगवान राम ने ऐसा क्यों किया ? मेरे प्यारे महानन्द जी कहा करते हैं कि राम ने इसलिए ऐसा किया क्योंकि बालक का जन्म शुद्ध व पवित्र वायुमण्डल में होना चाहिए। राष्ट्र–गृह में अशुद्ध जो वातावरण था, वह उनके आंगन में आने वाला नहीं था। वैसे भी हमारे यहां परम्परा थी कि उन ऋषि–मुनियों के आश्रमों पर बालक का जन्म होता, जहां का वातावरण शुद्ध हो।

बाल्मीकि आयुर्वेद के महान् प्रकाण्ड पण्डित थे। आयुर्वेद का आचार्य औषधि विज्ञान से जानता है कि किस माह में कैसा भोजन होना चाहिए, किस प्रकार की औषध होनी चाहिए। बालक का जन्म होते ही 'स्वर्ण का रूद्रा', 'मधु' 'समेकृतिभा' और अमृता (गिलोय) ये चार औषधि

ायों होती हैं, इनका उसकी रसना पर स्पर्श कराना चाहिए जिससे उसके दोष समाप्त हो जायें। भगवान् राम जानते थे कि आयुर्वेद का महत्व कितना है। बाल्मीकि तपस्वी थे, गायत्री छन्द के ऋषि थे व आयुर्वेद के महापण्डित थे। अतः भगवान् राम ने सीता को बालक के स्वर्णिम भविष्य व स्वास्थ्य हेतु बाल्मीकि आश्रम में भेजा था।

पुत्रों का जन्म

लव का जन्म बाल्मीकि के आश्रम में हुआ था और कुश, कुशा के वन में मिला था। जैसे मेरे प्यारे महानन्द जी ने एक समय प्रकट कराया कि सीता लव को त्याग अंजनी में जल लेने गई, वापस आने पर वह प्राप्त नहीं हुआ तो बाल्मीकि ऋषि ने तपस्या के द्वारा कुश को जन्म दिया। परन्तु ऐसा नहीं था कि तपस्या से बालक को उत्पन्न किया जा सके। वास्तविकता तो यह है कि कुशा का छेदन करते समय में यह बालक उन्हें प्राप्त हुआ। ऐसा मुझे स्मरण है कि सुरन्धित की सुमित्रा नाम की कन्या थी, वह महाराज स्वाति के आश्रम मे परिणित रहती थी। जब ब्रहित ब्रह्मचारी नाम के ऋषि उनके आश्रम में प्रविष्ट हुए तो 'मना वाचनम् ब्रह्म' मानो मन की गति चंचल होने पर उन ऋषि से सुमित्रा गर्भ की स्थापना हो गई। उसने अपने गर्भ से जन्मे बालक को वन में कुशा के आसन पर विराजमान करके बाल्मीकि आश्रम के निकट त्याग दिया। वह बालक महर्षि बाल्मीकि को प्राप्त हो गया और माता सीता ने लव और कुश दोनों पुत्रों का पालन किया। माता सीता ने कुश को भी कण्ठ लगाया और एक लोरी उसको व एक लव को देने लगी।

पुत्रों की शिक्षा

माता सीता अपने कार्य में बड़ी दक्ष थी। वे आयुर्वेद तथा ध ुनर्विद्या के मर्म को जानने वाली विदुषी कहलायी जाती हैं। धनुर्वेद को पान करने के पश्चात् धनुर्विद्या मानव के समीप आकर नृत्य करने लगती है। माता का यह कर्तव्य है कि माता अपने पुत्र को योग्य बनाए, क्योंकि वेद में माता को पृथा कहा है। वह अपनी प्रतिभा, अपनी महानता के द्वारा अपने बाल्य को ऊंचा बनाती है।

माता कुन्ती

मुनिवरों देखो! द्वापर काल में महाराजा कुन्तेश्वर (सूरसेन) की कन्या कुन्ती का अध्ययन करते हुए ही ज्ञान-शिरोमणी बन गया था। तेजस्वी ब्रह्मचाारिणी कुन्ती व्याकरण सहित सब विधाओं में पारगंत हो गयी थी। वह बड़ी तपस्विनी थी। भयंकर वनों में जाकर वनस्पतियों को उसकी सुगंध और तरंगों से जानती थी तथा वेद मंत्रों का गान गाकर उन वनस्पतियों को ग्रहण करती थी। सूर्य सिद्धान्तों के मन्त्रों का प्रायः अध्ययन करती थी। जों माता सूर्य विज्ञान और नाना वेद मंत्रों को जान लेती है, वह शिशु सूक्त का अध्ययन करने वाली माता, गर्भ विज्ञान को जान लेती है। गर्भावस्था में ऊषाः काल में सूर्य की आभा का संचय कर, कही रसना (जीव्हा) के द्वारा, कहीं श्वासों के द्वारा गर्भ स्थित अपने बाल्य को अमृत सींचन कर देती हैं। सूर्य, चन्द्रमा की किरणों का समन्वय प्राण द्वारा कर उन्हें अपने में संचय करने लगती हैं। माता कुन्ती के जब गर्भस्थल में शिशु का प्रवेश होता तब भी वह चाहती कि मुझे अमुक देवता वाले गुणों का आव्हान कर उनका संचय कर उस देवता के गुणों वाले बालक को जन्म देना है। गर्भावस्था में माता कुन्ती उसी प्रकार के वेद मंत्र का अध्ययन कर, प्राणायाम की विद्या से मन को एकाग्र कर उस मन्त्र का जाप करती तो उसी प्रकार के गुणों की सन्तान को जन्म देने वाली बनती। महर्षि दुर्वासा ने माता कुन्ती को इस विषय की शिक्षा भी प्रदान की थी। दुर्वासा मुनि इस विद्या को जानते थे। माता कुन्ती के गर्भ में जैसे ही शिशु का प्रवेश होता तो उसी समय ऋषि उनसे प्रश्न करते कि पुत्री। तुम्हें सन्तान में कौन से देवता के गुणों का धारण कराना है? वह उसी प्रकार का वेद मंत्र उसे प्रदान करते। उन वेद मंत्रों का जाप करने से, चिन्तन मनन करने से, उसी देवता के अनुरूप गुणों की सन्तान को जन्म देती। माता प्राण और अपान दोनों का सम्मिलान करके उसमें व्यान की पुट लगाती और साथ में वेद मंत्रों का पठन करती तो उन्हीं देवताओं के गुण सन्तान में आ जाते।

जब माता कुन्ती का विवाह पाण्डु से हुआ, तब महाराजा पाण्डु बोले कि हे देवी! मैंने यह अध्ययन किया है कि माता के गर्भस्थल में जब शिशु का प्रवेश हो जाए तो माता को तपस्या करनी चाहिए। देवी, तुम तपस्वी बनो। कुन्ती ने कहा हे भगवन्! हमने पुत्रेष्टि यज्ञ किया है। वैदिक साहित्य में जिनते भी शुभकर्म है उन सबको यज्ञ कहा गया है। उसमें पुत्रेष्टीयज्ञ भी है। ब्रह्मवर्चोसि का पालन करने वाली माताओं और पुरूषों में बड़ी विचित्रता होती है। जब कुन्ती गर्भवती हुई, और उनके गर्भ में धर्मराज युधिष्ठर का आत्मा आया तब कुन्ती प्रत्येक अपनी इन्द्रिय को सजातीय बनाने लगी। उन्हें धर्म में पिरोने लगी। वह जो भी अन्नाद् पान करती वह भी धर्म से ओतप्रोत होता। धर्म कहते हैं कि इन्द्रियों द्वारा उसके अच्छे गुणों को अपनाना। जैसे वाणी का धर्म है सत्य उच्चारण, चक्षु का धर्म सत्य निहारना और श्रोतों का धर्म है सत्य श्रवण करना। जब माता इस प्रकार विचारती कि "वाचं ते शुन्धामि प्राणं ते शुन्धामि चक्षुस्ते शुन्धामि श्रोत्रं ते शुन्धामि नाभिं ते शुन्धामि मेढ्रं ते शुन्धामि पायुं ते शुन्धामि चरित्राँस्ते शुन्धामि।।" अर्थात सब इन्द्रियों में धर्म ही देखती तो उसके गर्भ से धर्मराज पुत्र का जन्म तो होना ही था।

जब माता कुन्ती के गर्भ में अर्जुन का आत्मा आया तो माता उस काल में इन्द्र की उपासना करने लगी और वह कहा करती थी हे इन्द्र तू आ मेरे में प्रवेश कर। हमारे यहां इन्द्र के नाना अर्थ है इन्द्र वायु, विद्युत, राजा और परमात्मा को भी कहते हैं। कुन्ती ने उस समय इन्द्र की तपस्या की और अर्जुन का जन्म हुआ। शिशु को भी इसी प्रकार के संस्कार देने लगी।

महाराजा पाण्डु से महारानी कुन्ती के तीन सन्तान उत्पन्न हुई। माता कुन्ती ने कैसी कैसी सन्तानों को जन्म दिया और कैसे उन्हें महान बनाया? उन्हें अपने ज्ञान से गर्भ में और उसके पश्चात ऐसी शिक्षा दी कि वह महान् बने। पॉच पाण्डु पुत्रों में से तीन उनके अपने पुत्र थे और दो माद्री के। द्वापर के काल तक यह विद्या रही। अनेक माताएं इस विद्या को अपने में धारण करती रहीं। दुर्वासा मुनि इस विद्या को प्रदान कराते रहे।

माता देवकी

महापुरूषों का जन्म ऊंचे–ऊंचे भवनों में नहीं होता है वह दुर्गम परिस्थितियों में हुआ करता है। भगवान् कृष्ण का जन्म महाराजा कंस के कारागार में हुआ था। महाराजा कंस क्रूर और अभिमानी था। नारद ऋषि के यह कहने पर कि "तुम्हारी बहन के गर्भ से आठवे पुत्र का जन्म होगा वह तेरी मृत्यु का कारण बनेगा।" उस समय कंस ने विचारा कि मैं उस पुत्र को जन्म लेते ही नष्ट करूंगा और अपनी मृत्यु को नहीं आने दूंगा। मुनिवरों देखो! अभिमान में मानव क्या नहीं करता। कंस ने अपनी बहन देवकी और वासुदेव दोनों को कारागार में स्थिर कर दिया। जो भी शिशु देवकी के गर्भ से उत्पन्न होता उसको कंस अपने सेवकों से नष्ट करा देता। मृत्यु के भय से वह नवजात कन्याओं कों भी नष्ट करने लगा।

जब देवकी के गर्भ में भगवान कृष्ण का पुनीत आत्मा का प्रवेश हो गया और उसका गर्भ जब पंचम माह का हुआ तो देवकी के नेत्रों में एक लालिमा आ गई। तब देवकी अपने पति वसुदेव से कहती है "हे प्रभु! यह लालिमा क्यों बन गयी।" वासुदेव ने कहा कि हमारे द्वारा ऐसी संन्तान का जन्म होना है जो हमें कारागार से मुक्त करायेगा। यह वासुदेव कह रहे है जो आध्यात्मिक वैज्ञानिक थे वह अर्न्तात्मा से वार्ता करते थे। जब गर्भावस्था का छठा माह प्रारम्भ हुआ उस समय देवकी अपने ही आप ज्ञान की वार्ता प्रकट करने लगी। उन्होनें वासुदेव से कहा प्रभु यह मुझे क्या हो गया है? आज मैं मंत्रों का उच्चारण कर रही हूँ और मेरे अन्दर ज्ञान उत्पन्न होने लगा है। वासुदेव ने कहा "यह जो पुण्य आत्मा जो अन्तरिक्ष से आयी है जो तुम्हारे गर्भ में प्रवेश कर गयी है उसकी जो तरंगे है,, उसका जो ज्ञान है उसका समन्वय तुम्हारे मस्तिष्क से हो गया है। सप्त माह जब लग गया तब वह लालिमा समाप्त हो गई। ब्रह्मरन्ध से त्रिवेणी नाडियों में रसों का स्वादन होने लगा। देवकी ने कहा कि प्रभु। यहां क्या हुआ?

वासुदेव ने कहा कि देवी तेरे गर्भस्थल से योगी जन्म लेगा। वासुदेव ने कहा कि देवी! यदि हम इस कारागार में हम अपने सुन्दर पुत्र को जन्म दे सकते हैं, तो बिना समय के उसकी मृत्यु कोई नहीं कर सकता।

मेरे प्यारे देखो! महाराजा कंस के कारागार में देवकी सदैव गायत्री का चिन्तन करती हई संकल्प वादिनी बनी ओर भगवान कृष्ण को जन्म दिया। जो कंस अन्न देता था उसको एक सौ एक गायत्री का पाठ करके पान करती थी। वे माताएं कितनी पवित्र होती है जिनका मन पवित्र होता है, जो कृष्ण जैसे पुत्र को जन्म देती है।

माता मरुद्धती

नाना ऋषि–मुनि तपस्या करते रहे हैं। तपस्या में परिणत रहने पर उसके हृदय में एक समय एक विचार धारा उद्‌बुद्ध होती थी कि हम पुत्रेष्टी याग करेगें। तो वे अपनी दिव्या से कहते थे। हे देवी! हम पुत्रेष्टि संस्कार करना चाहते हैं जैसे उनकी दिव्या तपस्वनी होती थी, वैसी ही विचार धारा उनके पुत्रों के विचारों में व्यक्त होती रही है।

हमारे यहा सतयुग के काल में अयोध्या में मृची राजा हुए। वे बड़े, सुसज्जित थे, ज्ञान विज्ञान की उड़ान करते रहते थे। राजा के राष्ट्र में एक श्वेतकेतु मुनि रहते थे। श्वेतकेतु मुनि महान तपस्वी थे। वेद का अध्ययन, मंत्रों की गंभीरता में गमन करना, अपने अन्तःकरण में प्रवेश कर जाना, बाह्यजगत में चित्त को दृष्टिपात करना। ऐसे महान विवेकी थे। वेद का अध्ययन करते, तपस्या करते उन्हें जब इकत्तीस वर्ष हो गये तो वेद के मंत्र 'असुतम वेदाम ब्रह्मणम ब्रहे वायु पुत्रस्चतत कृति लोकाम्'' । याग के प्रकरण में जाने के पश्चात् उन्होंने अध्ययन किया कि मानव को पुत्र याग भी करना चाहिए। ऋषि विचारने लगे कि मुझे पुत्र याग भी करना है। पुत्रेष्टि याग के लिए अपने आसन को त्याग करके वे तपस्वी, राजा के समीप पहुंचे। राजा ने ऋषि का स्वागत किया, अपनी राजस्थली को त्याग दिया और कहा– भगवन्! मेरे लिए क्या आज्ञा है ? आपने मेरे आसन को पवित्र किया है। आप तपस्वी हैं, विवेकी हैं, वेदज्ञ हैं, वेद के मर्म को जानकर उससे उपरामता को प्राप्त हो गये है। ऋषि ने कहा– हे राजन्। मेरी कोई इच्छा नहीं है। मैं वेदों का अध्ययन करता रहता हूँ। स्वाध्याय करने में पुत्रेष्टि याग का वर्णन आया है। मेरी इच्छा यह हुई है कि मैं पुत्रेष्टि याग करूं और पुत्रोष्टि याग तब हो, जब 'राजस्य ब्रही व्रतः'' । राजा ने कहा आपका वाक्य मुझे स्वीकार है। मेरे द्वार एक कन्या है, मैं उसे समर्पित कर सकता हूँ। वास्तव में मुझे स्वयं उसे देने का अधिकार नहीं है। यदि कन्या चाहेगी तो मैं उसे समर्पित कर

सकता हूं। राजा और ऋषि राष्ट्र गृह में प्रवेश हुए तो राजकन्या ने बड़ी नम्रता से स्वागत किया। राजा ने कहा– हे कन्या। ऋषि की इच्छा है वे पुत्रेष्टि याग करें। ऋषि स्वीकार है तुम्हें ? राजकन्या ने कहा प्रभु! मेरा तो बड़ा सौभाग्य है। आज मैं एक ऋषि के आसन पर या ऋषित्व मेरे विचारों की तरंगों से पवित्र बन जाये। मानव का तो नैमत्तिक ज्ञान सम्पर्क से इतना विशाल हो जाना चाहिए कि वह उध्र्वा में उड़ान उड़ने लगे। प्रभु यह तो मेरा सौभाग्य है। ऋषि ने और राजा ने भी स्वीकार कर लिया।

कन्या ऋषि के सहित भयंकर वनों में चली गयी। ऋषि अपने आसन पर विद्यमान होकर तपस्या करने लगे। कन्या भी तपस्या करने लगी। वह भी गायत्री छन्दों का पठन–पाठन करती। जो तपस्या गृह में होती थी, वह तपस्या ऋषि के सहित वनों में होने लगी। इसी प्रकार पन्द्रह वर्ष समाप्त हो गये। इन पन्द्रह वर्षो में न तो देवी को यह भान रहा कि तू ऋषि के आश्रम में है, न ऋषि को यह भान रहा कि तू राज कन्या को लेकर के तपस्या में रत हो गया है। पन्द्रह वर्ष के पश्चात ऋषि ने देवी से कहा कि देवी। मेरी यह इच्छा है कि अब पुत्रेष्टि याग होना चाहिए। देवी कहती हैं कि प्रभु! हमारा जीवन तो तपस्वियों का है हम तो तपस्या में परिणत हैं। मैं केवल तपस्या के लिए आई हूं, पुत्रेष्ठी याग तो गृहों में होते हैं जहां ऐश्वर्य की सामग्री होती है यहां तो तपस्या की सामग्री है, आप तपस्या कीजिए मैं भी तपस्या कर रही हूँ। ऋषि ने कहा देवी! पुत्रेष्टी याग भी करना अनिवार्य है। देवी ने कहा कि इस भयंकर वन में नहीं जहां देवता भी हमें दृष्टिपात कर रहे हैं, नभचर भी दृष्टिपात कर रहे हैं। भगवन यहाँ याग कैसे हो सकता है? ऋषि देवी की वार्ता स्वीकार कर भ्रमण करते हुए राजा के राष्ट्र में आये। राजा ने उसी प्रकार अपने आसन को त्याग दिया और नतमस्तक होकर अतिथि सेवा करने के पश्चात् कहा प्रभु। आपका आगमन कैसे हुआ ? ऋषि ने कहा राजन! मुझे पुत्रेष्टी याग करना है मेरे लिए गृह का निर्माण करो,

ऐश्वर्य की सामग्री को एकत्र करो। राजा ने एक जलाशय के तट पर उनके गृह का निर्माण कराया और सब सामग्री उन्हें उपलब्ध करा दी। दोनों तपस्वियों ने उस गृह में प्रवेश किया और उसमें वास करने लगे। ऋषि ने पुत्रेष्टी याग किया, जिससे उनके गृह में पुत्र का जन्म हुआ। पुत्र का जन्म होते ही उन्होंने पुनः भयंकर वनों को गमन किया। भयंकर वनों में जा करके उस बाल्य को, उस ब्रह्मचारी को शिक्षा देना प्रारम्भ किया।

उस बाल्य के गर्भाशय में प्रवेश होने से पूर्व तपस्या की और उसे उन्होंने गर्भ में व्यवस्थित और सुसंस्कृत बनाया। गर्भस्थल में शिशु का प्रवेश होते ही उसे 'अमृतम ब्रह्मे देयाम ब्रही' नाना प्रकार के उपदेश को पान कराते उस बाल्य को माता के गर्भ स्थल से नैमित्तिक बनाना प्रारम्भ किया। गर्भ स्थल में बाल्य नाभि से माता से सम्बन्धित रहता है। नाभि का समन्वय हृदय से, हृदय का ज्ञान–विज्ञान से रहता है। माता जो तपस्या कर रही थी, तरंगों का समन्वय कर रही थी, वह तरंगें बालक में प्रवेश हो रही थीं। प्रवेश होतें एक पुंसवन सीमन्तोन्नयन जातकर्म संस्कारों में परिणत करा देते थे। जब बालक जन्म लेता था तो उसे नामकरण में, और अन्य संस्कार परिणय वृन्तियों में रत करा देते थे। कही निष्क्रमण संस्कार की आभा में रत हो रहा है। चूड़ावी (चूड़ाकर्म) कृति संस्कारों में रत हो रहा है तो उसे संस्कृत बना रहे हैं तपस्वी बनकर माता पिता बाल्य को वेद आरम्भ से पूर्व उसका यज्ञोपवीत संस्कार करते, जिससे बाल्य को याग करने का अधिकार आ जाये। तीन सूत्रों में उसे कटिबध्य कर देते। उसे ब्रह्म ग्रन्थी में कटिबद्ध कर नैमित्तिक शिक्षा देते और कहते कि वेदारम्भ से पूर्व तुम्हे याग करना है, देवताओं की पूजा करनी है। क्योंकि अग्नि देवताओं का मुख है उसमें हमें स्वाह देना है। जिससे हमारे शब्दों का समन्वय भू भुवः, स्वः लोक से हो जाये। आचार्य कुल में उपनयन के पश्चात वह वेद विद्या का प्रारम्भ करता। माता का सम्बन्ध बालक की नाभि से, पिता का सम्बन्ध बालक के हृदय से

मस्तिष्क से रहता है। ऋषि और आचार्य का सम्बन्ध बालक के मस्तिष्क से रहता है। ऋषि भयंकर वन में तपस्याकर ब्रह्मचारी को शिक्षित बनाते थे। कुछ समय के पश्चात बालक को आचार्य के गृह में प्रवेश कराया जाता है माता पिता भी अपने गृह में अध्ययन करा सकते हैं। किन्तु वहां नियमावली और व्यवस्थित जीवन नहीं रह पाता। माता अपने बाल्य को एक सीमा तक ही शिक्षा दे सकती है। जहां तक उसकी वृत्तियों की सीमा है, पिता उतना ही हृदय से प्रीति करता है जितनी हृदय की सीमा है, आचार्य मस्तिष्क में बुद्धि को, मेधावी ऋतम्भरा, प्रज्ञा बना करके मोक्ष की पगडंडी को प्राप्त करा देता है। महर्षि मार्कण्डेय ने अपने माता पिता आचार्यो के सहयोग से एक यन्त्र का निर्माण किया था जिस यन्त्र से विराजमान होकर लोक लोकान्तरों के उपर अध्ययन करते रहते थे।

मार्कण्डेय ऋषि महाराज भौतिक विज्ञान और आध्यात्मिक विज्ञान में रत रहते थे। उनकी माता का नाम मरुद्धती और पिता का नाम ऋषि व्रेतकेतु था।

महर्षि मार्कण्डेय जहां वह ब्रह्मवेता थे वहा विज्ञानवेता भी थे क्योंकि विज्ञानवेता का यह वृतम देखो वह विज्ञान की आभा में सदैव रत रहते थे। महाराजा शिव की सहायता से मार्कण्डेय ऋषि महाराज ने यन्त्रों का निर्माण किया था, जो चन्द्रमा और देखो अमृतम् पृथ्वी की कक्षा जहां सीमाबद्ध हो, वहां उनका यान विद्यमान हो जाता था। वहां वह यन्त्र विद्यमान करते, वहां पर विश्राम करते अथवा वहीं विद्यमान हो करके वह नाना प्रकार के विज्ञान के ऊपर विचार–विनियम करते रहते। देखों अपने यान अपनी परिनिधियों में विद्यमान हो करके प्रायः वह विचार विनमय करते रहे हैं। महर्षि मार्कण्डेय मुनि महाराज, जहां विज्ञावेता थे वहां, वह यागां भवतिं ब्रह्मे वर्णेः, वह याग में विद्यमान हो करके याग की क्रिया को ऊंचा बनाते थे और इनका यह कथन रहा है कि याग अपने में एक विचित्र धारा को अपनाने वाला है उन्होंने याज्ञिक सूत्रों का वर्णन किया और सूत्रों का वर्णन करके उन्होंने कहा

कि यह जो जगत है, यह सर्वत्र ही एक प्रकार का याग है विज्ञान में जाओं तो वहां भी तुम्हें याग ही दृष्टिपात आता है। क्योंकि विज्ञान में भी सुगन्ध की आवश्यकता रहती है

आध्यात्मिकवाद के लिए जब वह (साधक) गमन करता है तो वहां याग की आवश्यकता है, क्योंकि उससे वायुमण्डल पवित्र होता है। ऋषि–मुनि जब भी साधना में प्रवेश होते हैं तो वह याग करते हैं। माता–पिता जब यह विचारते हैं कि हम पुत्र याग करेंगे तो वह भी अपने गृह में सुगन्धि करते हैं अथवा याग करते हैं। वेद–मंत्रों में इस प्रकार के विचार आते हैं, जिनके ऊपर विचार–विनिमन करना बहुत अनिवार्य है। यज्ञमान वाक्य उच्चारण करता है योग के द्वारा 'यजनं पुत्र ब्रह्म कृतं देवाः अस्सुतं प्राणं वरणं स्वाहा' कह करके वह आहूति देता है, जिससे उनका गृह पवित्रता में परिणित हो। उसी प्रकार का साकल्य हो, उसी प्रकार के वेद–मंत्र, उद्‌गीत गाने वाले हों और उसी प्रकार का विचारक, उद्‌गाता उदगीत गाने वाला हो। तो इस प्रकार जब साधक अपनी साधना में प्रवेश होता है तो वह यह विचारता है कि मेरा याग, मानो मेरा वायुमण्डल पवित्र हो तो मेरा आध्यात्मिक याग सम्पन्नता को प्राप्त होगा।

27 दिसम्बर 1991, बुढ़ाना (मुजफ्फरनगर)

विदुषी कन्या अग्नि तृष्णा

मुद्गल गोत्र में उत्पन्न होने वाली मेरी पुत्री अग्नि तृष्णा ज्ञान में रमण करती रहती थी एक समय मेरी वह बालिका मुद्गल ऋषि आश्रम से आ पहुँची। वहां नाना प्रकार की औषधियों का लेपन मस्तिष्क पर लगाने के पश्चात् उसने मुझसे कहा कि मैं यह क्या अपने मस्तिष्क पर अर्पित करके आपके समक्ष जा पहुंची हूं? मैंने कहा कि हे पुत्री ! यह औषधि है। पुत्री ने कहा कि औषधि क्या होती है ? मैंने कहा कि औषधि मानव का जीवन होती है, ज्ञान होता है। उसने कहा कि ज्ञान क्या होता है? मैंने कहा कि पुत्रवत्! ज्ञान मानव की एक अमूल्य निधि होती है। अमूल्य निधि वह होती है कि जो प्रभु के आनन्द से प्राप्त होती है। प्रभु का आनन्द वह होता है कि जिसमें पुत्री नेति–नेति उच्चारण करना स्वाभाविक हो जाता है।

जब यह वाक्य उसके मस्तिष्क में पहुंचा तो उसने पुनः प्रश्न किया कि हे भगवान! मैं अपने मस्तिष्क में क्या लेपन करके आई हूं ? तब मैंने कहा कि औषधियां मस्तिष्क पर लेपन करने का उद्देश्य यह कि तुम्हारी बुद्धि तीव्र हो जाए। क्योंकि **मानव के मस्तिष्क पर चन्दन, अगर, तगर, सोनवत और शंकवेला औषधियों का लेपन करके बुद्धि कुशाग्र बनी रहती है और मानव को चंचल नहीं होने देती।** मानव के मस्तिष्क में बहुत सी नस–नाड़ियां इस प्रकार की होती हैं जिनकी गति ध्रुवा होती हैं परन्तु उन औषधियों से उनकी गति ऊर्ध्वा बन जाती है क्योंकि इन औषधियों में चन्द्रमा का रस होता है, सूर्य की किरणों की भांति–भांति की प्रतिभा होती है। इनका लेपन करने से पुत्री। तुम्हारे मस्तिष्क की नस–नाड़ियों की ऊर्ध्वा गति होती है। पुत्री ने कहा कि प्रभु ! मेरी नस नाड़ियों की ऊध र्वा गति होने से क्या होगा? तब कहा गया कि लोक–लोकान्तरों में तुम्हारी ऊर्ध्वा गति बन जायेगी। ऊर्ध्वा गति से मानव का जीवन स्वच्छ रहता है काम वासना की प्रवृति उत्पन्न नहीं होती और मानव की ऊर्ध्वा गति होकर वह परमात्मा के आंगन को अग्रसर हो जाते हैं। चेतना की गति ऊर्ध्वा में होती है। इसलिए हम भी चेतना में रमण

करने वाले बने। पुत्री ने कहा कि प्रभु! हमारी चेतना में गति क्यों होनी चाहिए? मैंने कहा कि चेतना आत्मा का स्वभाव है, इसलिए वह चेतना के आंगन को चलता है। इस चेतना का स्त्रोत हृदय और हृदय का स्त्रोत बेटा नेति नेति शब्द है। नेति अर्थात् यह आगे उच्चारण करने वाला नहीं। यह अनुभव का विषय है।

उसके पश्चात् पुत्री ने तीसरा प्रश्न किया कि भगवन् मेरे मस्तिष्क पर लेपन क्या है? तब मैंने कहा कि हे पुत्री ? यह तुम्हारे मस्तिष्क का श्रृंगार है। इससे हमें यह जानकारी मिलती है कि वास्तव में हम पवित्र हैं, हम सुगन्धित हैं। हमारे जीवन में दुर्गान्धित नहीं होनी चाहिए। दुर्गन्धि हो जायेगी तो हमारे मस्तिष्क का जो यह श्रृंगार है, जो तेज है वह नष्ट हो जायेगा। यदि **हमारी काम प्रवृत्ति बन गई तो हमारे मस्तिष्क का तेज चला जायेगा,** सुकृत चला जायेगा, हृदय का सुकृत नष्ट हो जायेगा। इसलिए पुत्री! हमें अपने मस्तिष्क को सदैव ऊंचा बनाना चाहिए और औषधियों से युक्त बनाना चाहिए। हमारा मस्तिष्क ऊंचा होना चाहिए। जिस मानव का मस्तिष्क नीचे चला गया उस मानव का जीवन और चेतना सब नष्ट हो जाती है। पुत्री ने कहा कि क्या हमारा सुकृत और तेज मस्तिष्क में ही रहता है? मैंने कहा कि बेटा ! संसार में सभी कुछ मस्तिष्क से विचारा जाता है। मस्तिष्क में ही मन की प्रतिभा मानी है, मस्तिष्क में ही आत्मा की चेतना मानी है, मस्तिष्क में ही उस चेतनावत् को स्वीकार किया गया है। आत्मा का प्रतिबिम्ब ही मस्तिष्क में आता है। इसलिए वही तो हमारा जीवन है। उसी को हमें सदैव जानना अनिवार्य है।

पुत्री ने पुनः यह कहा कि प्रभु! हमारा मस्तिष्क किसमें ओतप्रोत रहता है ? मैंने कहा कि हे पुत्री। औधधियों में और औषधियों चन्द्रमा में ओतप्रोतं रहती है और चन्द्रमा गन्धर्व लोक में और गन्धर्व इन्द्रवत् में और यह इन्द्रवत् हृदय में प्रतिष्ठित रहते हैं। हृदय को ब्रह्म का स्थान कहा गया है।

पुत्री ने कहा तो भगवन् ! हृदय को किस काल में कामनी

कहते हैं ? मैंने कहा– जिसको ज्ञान और विवेक नहीं होता, जो उदासीन नहीं होती और जो कामातुर रहती है जिसमें संकीर्णता, अन्धवातन प्रसव प्रये गच्छन्त्तम' रहा है। वही तो कामनी कहलाई जाती है। पुत्री कदापि कामनी नहीं होती, परन्तु जब उसकी विनम्रता नष्ट हो जाती है तो वह पुरूष के सुकृत को नष्ट कर देती है, इसलिए उसको कामनी कहा जाता है। तब पुत्री ने कहा कि प्रभु। मैं संसार मैं कामनी कभी नहीं बनूंगी। तब यह कहा गया कि पुत्रवत् संसार में जो आयुर्वेद का पण्डित बन जाता है और आयुर्वेद के विज्ञान को अच्छी प्रकार जान लेता है वह संसार में न तो कामिनी के आश्रित होता है और न अपने मन का दास बनता है। सदैव औषधियों में ऐसे रमण कर जाता है जैसे भगवान कृष्ण सोलह हजार गोपिकाओं (वेद की ऋचाओं) में रमण कर जाते थे और उन्ही में रमण करते करते उन्हें निद्रा आ जाती थी। संसार में आयुर्वेद का पण्डित वहीं होता है जिसको सदैव नेति नेति कहने का अवसर प्राप्त होता रहता है और जब वह अपने मन में नेति–नेति का प्रतिपादन करता है मानो औषधियों को जानता रहता है, उन पर अनुंसंधान करता रहता है, उन का निदान करता रहता है, तो वह संसार में मानवीयत्व को प्राप्त होता रहता है।

17.1.1970 बरनावा

अहिंसा :

मैंने एक समय अपनी पुत्री से कहा कि हे पुत्री! इस सप्ताह में केवल अहिंसा परमोधर्म की विवेचना होनी चाहिए। उस समय पुत्री ने कहा था "अहिंसा परमो धर्मः प्रमे अस्तिः आश्वनति रूद्रो प्राणास्चते आक्रेति लोकाः प्रभा अश्वेति रूद्रो भागाः।" भगवन् यह जितना जगत है क्या इसमें अहिंसा परमो धर्म से अन्य कोई विषय है? मेरी उस पुत्री ने अहिंसा की मीमांसा करनी प्रारम्भ कर दी। उसके वह वाक्य आज पुनः मुझे स्मरण आ रहे हैं जैसे आज मेरी पुत्री मेरे समीप विराजमान होकर के उन वाक्यों को प्रकट कर रही हो। उस समय वह केवल आठ वर्ष की पुत्री थी। उसने अहिंसा परमोधर्म की विवेचना की कि

"प्रभु! मानव का मन भी एक प्रतिमा को लेकर चलता है। यह कहीं हिंसक बन जाता है कहीं अहिंसा परमोधर्मी बन जाता है। धर्म की मीमांसा सब मन के अन्तर्गत रहती है। आज एक मानव चंचलता में कामातुर हो जाता है। कामातुर होने के लिए उसका आत्मा धिक्कारता है। क्या इस कामातुरता को अहिंसा परमोधर्म कह सकेगें? कामातुर होना भी एक हिंसा कहलाती है।

मेरी पुत्री ने कहा "मेरा विषय केवल प्रश्न करना है और आपका विषय उसका उत्तर देना है। यहां अहिंसा और हिंसा दोनों का ही विवाद है। क्योंकि कोई मानव प्रश्न उसी काल में करता है जब अहिंसा परमोधर्म की मीमांसा को नहीं जानता।

गर्भ को उत्तम बनाने की औषध :

उन प्रश्नों में आठ वर्ष की कन्या ने एक प्रश्न किया था वह मुझे आज तक स्मरण है "सु गच्छन्तमा रध्यम् माम् बन्चतम् ब्रह्माणे लोकम् ब्रह्मो अस्ति सुप्रजाः वेतु न गृहणामी अप्रतम ममे वाचों। सम गच्छम् ब्रह्माणें लोकम वेतु न गृहणामी अप्रतम् ममे वाचो स पुत्रा जन्योति गिरणम् देवाः।" उस समय कहा था कि हे भगवान। मैं गृहस्थ आश्रम में तो जाना नहीं चाहती परन्तु मैं यह जानना अवश्य चाहती हूँ कि यदि मुझे यह अवसर प्राप्त हो जाये कि में गृहस्थ आश्रम में प्रवष्टि हो जाऊं तो प्रभु। मुझे कैसी सन्तान को जन्म देना चाहिए? उस समय प्रभो अस्ति। मैं यह चाहती हूँ कि मैं कैसे पुत्र को जन्म दूं? हे प्रभु यदि मेरी मूढ़ मति हो जाये, गृह आश्रम का जो विज्ञान है, आपने जैसा कहा है उसे भूल जाऊं। मानो यदि ग्यारहवी रात्रि में मेरे गर्भ की स्थापना प्रतीत हो जाये तो मेरे गर्भाशय को उत्तम बनाने के लिए आप के समीप कोई औषधि है क्या? या इसकी कोई औषधि नहीं है। आत्मा की, ज्ञान की अथवा वनस्पति की कोई भी औषधि इस प्रकार की हो, वह जानना चाहूंगी।

यह एक बड़ा जटिल वाक्य था। मेरे लिए इसका उत्तर देना कोई सहज नहीं था। यह एक बड़ा विशाल विज्ञान है क्योंकि परम्परा से ही हमारी इस प्रकार की एक धारा रही है कि उस धारा के

अन्तर्गत मैने बहुत से प्रश्नों के उत्तर दिए इसका उत्तर देते हुये हमें एक ही उत्तर सुहाया कि "सम् मा मम् प्रभे यश्वनि लोकाः यम भगाया मध्यम प्रकृति रूद्रो ये स्वागम् कृतिका नक्षत्राः आभानु देवम् भविनेतु रूद्राः यश्वन्तम् भोगा यन्तनमम् मामाति ओषध्प्रधे संगतम् मूलत प्रभे अश्वतम् मम वेचाः" उत्तर देते हुए मैंने कहा कि हे पुत्री। तुम्हारे मन में वास्तव में यह शंका कैसे उत्पन्न हुई ? यह शंका उत्पन्न होने योग्य नहीं थी। ऐस किया ही क्यों जाये? यदि ऐसा हो जाये तो उस समय तुम्हे यह विचाराना है कि कृतिका नक्षत्र जिस समय उदय हुआ हो, जब सोम्य चन्द्र रात्रि हो और चन्द्र रात्रि के अर्ध भाग के उपरले भाग में कृतिका नक्षत्र की छाया पृथ्वी पर हो। मानो कृतिका नक्षत्र में यह उपासना करनी है उस कृतिका नक्षत्र में तुम्हें निद्रा में नहीं रहना चाहिए। उस समय तुम्हें जागरूक रहकर गायत्री छन्दों का पठन–पाठन करना चाहिए। उस समय गायत्री पठन–पाठन की जो पद्धति है उस पठन–पाठन की पद्धति में मानो गायत्री छन्दों का अधिक पठन–पाठन होना चाहिए। उस पठन–पाठन में ब्रह्म का चिन्तन होना बहुत अनिवार्य है। जब मानों कृतिका नक्षत्र भी अस्त हो जाए। कृतिका नक्षत्र के अस्त हो जाने के पश्चात् उस समय रोहणी नक्षत्र की प्रतिभा आती है। रोहणी नक्षत्र की प्रतिभा आ जाने के पश्चात कृतिबोध होता है तब सूर्य उदय होने से पूर्व भयंकर बन मे चले जाओ, और वहां जा करके देखो। एक शंखहोली ओषधि होती है एक शंखा–मृचि और एक अनवेतना इन तीनों औषधियों का सोम रस बना करके प्रातः सूर्य उदय होते ही सूर्य की किरण के साथ उसको पान कर लेना चाहिए। उसके पान करने से गर्भाशय में जो एक अंकुर है उसकी जो आकृति है वह कृतिका नक्षत्र में सौम्यता के प्रति आकृत हो जायेगी।

पति पत्नी का चिन्तन :

उस समय माता–पिता दोनों को यह विचारना है कि हम वास्तव में किस प्रकार की वार्ता प्रकट करें। जब माता पिता दोनों एक स्थान में विराजमान होते हैं उस समय पति–पत्नी का तो कर्तव्य

ही यह है कि प्रभु का चिन्तन करें।उनके लिये पति–पत्नी का जो सम्बन्ध है वह केवल भोग विलास के लिये ही नहीं है, भोग विलास तो उसके लिये गौण है उनमें कोई तथ्य नहीं होता परन्तु उन दोनों को क्या विचार विनिमय करना है? मुनिवरों देखो! उस समय मैंने पुत्री को निर्णय कराया था कि कैसी वार्ता प्रकट करें "सम भगाना मधु बन्धनाः देवो मयातामी मय वाच सर्वे भगवन्तनम् मयाः वेतु माधन्ति धृवश्चत्तम मेधा वसुधरणे आभ्याम् नमो नमामि ब्रह्माः।" उस समय पति पत्नी से कहता है देवी! वास्तव में हमारा जीवन ऐसा है जैसे गंगा–यमुना दोनों का जल एक हो करके गंगा सागर में परिणित हो जाता है। हम दोनों को इसी प्रकार से रहना चाहिए। जैसे ब्रह्म और प्रकृति दोनों मिल करके एक ब्रह्म का स्वरूप बन जाता है इसी प्रकार हे देवी। हम संसार में ऐसा बनाना चाहते है। रहा यह वाक्य कि हम दोनों की प्रतिभा हमारे गृह में परिणित होनी चाहिये क्योंकि यह जो हमारा गृह है यह हमारे विचार करने के लिये एक सुन्दर मन्दिर है। जैसे प्रभु ने हमारा शरीर मन्दिर बनाया है इसी प्रकार हम दोनों के मध्य में जो अन्तरद्वन्द है उसे नष्ट करके हम एक महान सुन्दर मन्दिर में विराजमान हो। हे देवी! संसार में वृधि अकृतम् ब्राह्मनास्ते। "यम भगाना बधू कंचनम माम् वेतु ब्रह्मणेः यचतानम हिंसक प्रमे अस्तो नमामि देवाः"। यदि हम दोनों की यहां नाना प्रकार के दुष्कृत कार्य और विचारधारा मस्तिष्क में रहे तो हमारा जो यह शरीर रूपी गृह मन्दिर प्रभु ने रचा है यह वास्तव में भ्रष्ट हो जायेगा। हमें प्रभु और देव जिस द्वार से हमारे शरीर लेकर आये हैं जो गर्भाशय हमारा सुन्दर मन्दिर है जिसको रचाने का न तो माता को ही ज्ञान था और न पिता को ही ज्ञान था उसको रचाने वाला प्रभु है। जब हम संसार क्षेत्र से जायेगें तो देवी जब प्रभु के द्वार पर हमारा यह शरीर रूपी मन्दिर जायेगा और मन्दिर की जब वह दुर्गति दृष्टिपात करेगें तो हम प्रभु को क्या उत्तर दे सकेगें? हमारे द्वारा कोई उत्तर नहीं बन पायेगा। इसीलिये देवी ! हमारा कर्तव्य है कि हम वास्तव में देवी सम्पदा का पान करना चाहते हैं क्योंकि वह हमारा सोम रस है,

उसको पान करने से हमारे जीवन में एक महानता की तरंगे उत्पन्न हो जाती हैं। "सम भागम् मधुबत्धनम् बेतु ऋश्यम् भगवन्थना देवो न भगम् भगते इदम मम बेचा सम भवेतम् माम धेनु।" उस काल में कोई हिंसक प्राणी भी हमारे गृह में आ जाये तो वह भी हमारे इस तेजस्विता को दृष्टिपात करता हुआ हम पर आक्रमण नहीं कर सकेगा। क्योंकि शत्रु भी उसी काल में आक्रमण करता है जब हमसे दुष्कर्म हो जाता है।

अम् भगानम् मधबन्धनम् में हो वाचनेति कर्मणाः मेघम् ब्रह्में व्यापा वस्तु निराधन् नमन् त्वा कृते जैसम् भवानम् दे वस्ति पुत्रो गणेश्म् माम् वस्तम् पुत्री गति ईश्वराः ।।

देवी ! हम संसार में मित्रभाव से रहना चाहते जैसे तू मेरी देवी है तू वास्तव में मेरे हृदय की गृहणी है परन्तु मैं यह चाहता हूँ कि हे देवी ! हम दोनों में प्रीति होनी चाहिये, स्नेह होना चाहिए। मैं दूसरी गृहणी नहीं बनाना चाहता। यदि मेरे हृदय में कोई दूसरी गृहणी बन गई तो वह मेरे हृदय को नोच–'नोच कर ऐसे निगल जायेगी जैसे बाज चिड़ियों को निगल जाता है।

मम गतानम् मधवन्वनामी देवी न पापम् हृदयस्त ततम् मधाः। कटम ब्रह्मे लोकं प्रभा नस्तम् देवध्यो नमामि हृदयम् गृहणाम् मध वेचु ब्रह्माः ।।

वेद कहता है हमारा धर्मज्ञ ऋषि कहता है कि हे देवी ! संसार में हमें कैसे रहना चाहिये? जैसे परमपिता परमात्मा और प्रकृति है जैसे पृथ्वी और सोम है, अर्थात् जैसे पृथ्वी और चन्द्रमा है इन दोनों ही का मानो एक दूसरे से उनको कितना स्नेह होता है। वह चन्द्रमा अमृत देता है तो पृथ्वी उसको ग्रहण कर लेती है। दूसरा चन्द्रमा पृथ्वी के लिए नही होता। यदि उसके बीच कोई दूसरा चन्द्रमा आ जाये तो पृथ्वी नष्ट हो जाती है। संसार अस्तव्यस्त हो जाएगा। इसी प्रकार हे देवी तेरे से मेरी कामना है। हमारे बीच में कोई न आए और यदि मेरा मन मेरी प्रवृत्ति किसी द्वितीय सुन्दरी पर चली जाये तो वह मेरे सौन्दर्यत्व को महान् एक ऐसा कलंक होगा

जैसे हमारे यहां कृतियों (कहानियों) में गौतम ने चन्द्रमा को कलंकित बना दिया। इस प्रकार देवी! मैं कलंकित नहीं बनूंगा प्रभु हमारे दोनों के मध्य में रहने वाला ॐ त्रैतवाद से संसार की रचना होती है। त्रैतवाद ही में हमें रहना है। हे पुत्री! यदि तुम्हें गृहस्थ आश्रम में प्रविष्ट होने का सौभाग्य प्राप्त हो जाये तो विचार यही होने चाहिए। उस समय पुत्री ने कहा कि प्रभु पत्नी को कैसी चर्चा प्रकट करनी चाहिए ? मधु कंठनम ब्रह्मे अस्वाति देवं मधु व्रत्यणं देवो न ब्रह्मा।।

हे पुत्री ! मेरे हृदय की तो यह इच्छा नहीं कि तुम गृह आश्रम में प्रविष्ट हो जाओं परन्तु तुम किन्हीं कारणों से गृह आश्रम में प्रविष्ट भी हो जाओ तो मेरे हृदय की वेदना यह है कि तुम इस समय मधुर भाषा उच्चारण करना। मधुर तुम्हारा भूषण है और पृथ्वी के तुल्य तुम्हें रहना है। जब तुम्हारे गर्भ से सन्तान का जन्म हो, तब जैसे मानो पृथ्वी अन्न भी देती है और हमारी दुर्गन्ध को भी अपने में समेट लेती है। संसार में इसी प्रकार का तुम्हें बनना है।

पति के प्रति कैसा गृतम व्यवहार अप्रभें?

आभा नव्यम् पति ब्रह्मा अस्वेति लोकम् मम् वेतु ब्रह्मे। आस्वानि लोकाः ब्रह्मणातम् वेतु भगाया।

संसार में कोई पत्नी यह नही चाहती कि मेरा पति दुराचारी बन जाए। सदैव उसकी यह कामना रहती है कि मेरा पति सुन्दर, सदाचारी बने। परन्तु हे देवी! संसार में चरित्र ही जीवन है। चरित्र के लिए तुम क़िसी से समझौता न करना।

भय भारतम् ब्रह्मे यशवानि लोकम् भ्रष्टानि मतयम् पित प्रभवे।

हे पुत्री। तुम्हारा पिता हो, यदि उसकी कुदृष्टि तुम्हारे प्रति हो जाये तो उसको "अत्रानम् सृगराणी वस्तेः मृत्यु न दण्डम् ब्रह्मे कसमस्ती रूद्रो भागाः प्रभे अस्तते।" तुम्हें उसको भी मृत्यु दण्ड देने का अधिकार है। उसको मृत्यु दण्ड दे देना चाहिए।

मृत्यम् भगानम् मामवेतु अस्वनेतम् मा भागा ब्रह्मणे। अस्वेत रूद्रो सहस्त्राणी भगम् न भद्रो प्राचीन मन्थनम्।

हे पुत्री ! संसार में जो सुयोग्य पत्नी होती है जो घोषणा

करके पति को कह दे कि मैं तुम्हारी जो त्रुटियां हैं अधिक से अधिक एक सहस्त्र, उन्हें क्षमा कर सकती हूँ और यदि उससे अधिक हो जाये तो उससे पूर्व मेरी मृत्यु आ जानी चाहिए।

मृत्यानी गच्छम् माम व्रतन नमानि देवो भगं ब्रह्मणा। ये न कर्मन्यु नमामि प्रश्नों वृध्यम् ब्रह्मों लोका जैसे भगवान कृष्ण ने शिशुपाल की एक सौ एक अशुद्धियां क्षमा कर दी थी और उसके पश्चात् उसका मस्तिष्क गिरा दिया था इसी प्रकार हमारा कर्तव्य है कि हमें संसार में भयभीत नहीं रहना चाहिए।

भय अक्रता मयात्तम् माम् वाचन्म् नमानि पिप्लादम ब्रह्मे कोपनमः।

हे पुत्री ! तुम्हें यह प्रतीत है महात्मा प्रह्लाद ने अपने पिता को यह कह दिया था कि तुम प्रभु नहीं हो। मैं तुम्हारे आंगन में आने वाला नहीं हूँ। मैं संसार में अपने आत्म बल से रहता हूँ। पिता मेरे द्वारा आपका वह भय नहीं है जो प्रजा को है। मैं आपका नहीं प्रभु का पुत्र हूं और संसार में प्रभु का बनकर रहुंगा।

सम् वृतानम् माम वन्चतम् देम्यो नमामि, गर्भस्यतम् मेघाः व्यापनोति प्रकृत्तम् वनः मनस्तो देवम्यो नमामि सुन्दरम भयाः।।

हे पुत्री ! संसार में तुम्हे पुत्र उत्पत्ति की यदि कामना हो उस समय 'भोगम् प्रभे अस्ति। भोगाम् तो यज्ञधनम्।'' वह भी ऐसे करना है जैसे यजमान यज्ञ–शाला में स्वाहा करके आहुति देता है। वहां गृहस्थ में शुभ कर्म के साथ वैदिक विचारधारा होनी चाहिये। यदि संसार में कोई ऋषि बनना चाहता है, कन्या ऋषिका बनना चाहती है तो दर्शनों की विचार धारा को लेकर के चले अन्यथा संसार में यह जीवन, मृत्यु के तुल्य बन जाता है।

सम भागनम् मधु केतबृधनम् आ पान्चलोकम् मधवेस्तानी।

क्रातम् नमामि अस्वन्त लोका अभा नध्यम् ब्रह्मणे आभा कृति।

उस समय कन्या ने कहा, "हे प्रभु ! आप तो मेरे बड़े पूजनीय हो क्योंकि मैं आपके चरण कमलों में पनपी हूं और तपी हूं। मैं अभी और तपना चाहती हूँ। मेरी भी इच्छा नहीं कि मैं गृहस्थ आश्रम में प्रविष्ट न होऊ और यदि मैं किसी कारण से गृहस्थ में चली भी गई

तो प्रभु। मैं आपके वचनों का अवश्य पालन करूंगी। मेरी तो यह कामना है कि मेरे हृदय में जन्म जन्मान्तरों तक सदैव यह भावना प्रविष्ट रहे।

"गुणान, ब्रह्माणम् तपा ब्रह्में व्यापाः लोकम् गुरवस्चतम् ब्रह्मे अकारम्।"

जैसे इस प्रकृति को तपाने वाला प्रभु है ऐसे ही गुरू अपने शिष्य को तपाते हैं। मैं आपके चरणों में तप गई हूँ और तपने के पश्चात् मेरी सदैव यही कामना रहेगी कि अब मैं तप की उस अवस्था को प्राप्त करना चाहती हूँ जिस अवस्था को प्राप्त कर मैं संसार में गौरव के साथ कोई वाक्य प्रकट कर सकूं।

जन्नम् ब्रह्मे अपामति सप्तम् मम वेचु कृतम् मनवेतु समातम्! ये न ग्रहणम् भागा वसु नभयम् में धर्सर्व लोकम् मम् वेचु प्रभा।

आज जब हम यह विचार लेकर चलते हैं कि मेरे मन में कामना है लेकिन वह इस प्रकृति के आवेशों से क्यों परिवर्तित हो जाती है? हे पुत्री! वास्तव में हमे प्रभु को भी अपने से दूर नहीं करना चाहिए। परन्तु देखो तब हम कामना से उत्पन्न संस्कारों से बंधे रहते हैं।

प्रकृतम् मम देचा प्रमेसम् माम वेंतु वृचनम् आधानम ब्रह्म अस्तुति।

संस्कारों का जगत :

हे देवी! संसार का प्रकृतिवाद भी प्रभु के आश्रित है। इस प्रकृति से जो प्रसाद प्राप्त होता है वह भी मानों प्रभु का दिया हुआ है। हमें वास्तव में प्रभु के आश्रित रहना चाहिए। यह सदैव हमारी कामना रहनी चाहिए। क्योंकि संसार में कोई भी मानव ऐसे ही नहीं आता। यह तो सम्बन्धों का संसार है। यहाँ कोई मानव कर्तव्य पालन करने के लिए आ रहा है कोई किसी का ऋण देने के लिए आ रहा है कोई किसी से ऋण लेने के लिए आ रहा है। यह संसार इसी प्रकार चलता रहता है।

परम ब्रह्मे वाचाः मम वान्चनम् मेघाः भारद्वाजा मम वेच्
गोत्राः यश्वे नरातम् मेघनम ब्रह्मे आर्ध भागम् ब्रह्म अस्तुति।

हे पुत्री ! एक समय भारद्वाज गोत्र में उत्पन्न होने वाले अक्रेति ऋषि ने यह कहा था कि वास्तव में, मैं यह नहीं चाहता कि अपने कर्मो से भारद्वाज गोत्र को कलांकित बनाता चला जाऊ। मैं तो यही चाहता हूँ कि भारद्वाज गोत्र सदैव उत्तम बना रहे और ऐसा बना रहे जैसा शुक्ल पक्ष का चन्द्रमा है जैसे प्रातः काल का सूर्य है।

पुत्री ! तुम्हें यह प्रतीत है कि जब मेरे अस्तुति "महानन्दनम् ब्रह्मे अप्रधानम्" जब यह मेरे समीप आये थे तो मैंने इसके प्रति क्या वाक्य प्रकट किये थे ?

सम गथेमा मा वेतु नराधम् आर्ध भागा गोत्राणी रूद्रो भवेस्म्। में मा चता प्रभे अस्वेती लोकम् मेघा वर्णनम् ब्रह्मे अस्वेति सुपजाः।।

हे पुत्री तुमने भी इन्हे धिक्कारा, मैंने भी एक ही वाक्य कहा था कि हे आर्ध गोत्र में उत्पन्न होने वाले अर्धभागी तू आज कैसा बन गया? महर्षि अर्धभागा का जीवन चरित्र तुम स्मरण करो। उसको स्मरण करने से तुम्हारे जीवन की प्रतिभा उत्तम बनेगी।

ऋषम् भवानम् पुत्री न गच्छम् माम वेतु ब्रह्मणे वाचाः वेपनात्तम्, ब्रह्मे आस्वति नो रध्यम् मेघे प्रभानम् विग्रिति प्रजाः।।

अरे ! धिक्कार है, अर्थभाग में उत्पन्न होने वाले बालक, क्या ऐसा ही तुम्हारा अर्धभाग गोत्र है ? क्यों आज तू दूसरे गोत्र की कन्या को हनन करने वाला है ? क्यों तू आज अपने कुल को कलंकित बना रहा है ? आज तेरा यह कर्तव्य नहीं है कि तू इस गृह को कलंकित बना और तेरे जीवन की जो कलंकता है वही आज तुझे निगलती चली जायेगी। उस समय महानन्द जी ने कहा था क्या वह तुम्हें स्मरण है?

सम भवेतम् मम अन्धकम् प्रभे काश्वानम् भागी वतनम् ब्रह्माः अस्वेति वृध्यम् मान वश्चनम् कशमश्य ब्रह्मे अक्षमा प्रभे अस्तम्।

उन्होंनें कहा था कि अर्धभाग में उत्पन्न होने वाला में अवश्य हूं परन्तु मैं आपकी शरण चाहता हूँ क्योंकि आप जो ब्रह्माणी लोकः प्रभे ब्रह्म वेताम् वृहविस्तम्" मैं आपकी शरण में आया हूँ। जो ब्रह्मवेता है जो अपनी प्रवृत्तियों से शांत है, मैं हृदय में उस सान्तवना को

चाहता हूं। जिससे मेरा हृदय मुग्ध हो जाये। तो उस समय हे पुत्री ! तुम्हें यह प्रतीत है कि तुमने भी मुझे धिक्कारा था, जब मानो देखो तुम्हारी वार्त्तानी वध्यनम् प्रभे अस्तम्। "हे प्रभु। आज तुम किसको शिष्य बनाने जा रहे हो।" मानो सेवक बनाने जा रहे हो। इसके शिष्य बनने से आप भी कलंकित हो जायेगें और मैं भी कलंकित हो सकती हूं।

हे पुत्री ! तुम्हे प्रतीत है उस समय मैंने क्या कहा था? "समां गच्छत प्रभे अस्तिः मम वेचानि कलंकिता अस्तम न कलंकाति प्रभे अस्ति। हे पुत्री ! "कलंकित संसार में कोई बालक नही होता। जो बालक सुयोग्य होता है। उसके प्रति तो मानव की संवेदना होती ही है परन्तु जो अपवित्र बनकर आया है नाना प्रकार के दुर्गुणाम् ब्रह्मे अस्ति मानो देखो उसे पवित्राणी गच्छतम् उपदेशाः" आज उसे उपदेश देना बहुत अनिवार्य है। जो मानो कीचड़ में सना हुआ है उसी को माता शुद्ध बनाती है, उसी को तो स्नान कराती है। प्रभु भी मानो देखो उसी को स्नान कराते हैं। जिसके अनुग्रतानी कृतानी अस्ते–अनुपम कृपा के साथ–साथ मानो देखो वह अपने पन में रमण करा देते हैं क्योंकि ब्रह्मज्ञान कोई हमारी सम्पदा नहीं है। ब्रह्मवेता तो ब्रह्मवेता है ही क्योंकि ब्रह्म तो संसार में है ही, वह तत्वों का तत्व है वही सखा है, वह हमारी सम्पदा नहीं है ब्रह्मविद्या हमारे द्वार आई है दूसरों को देने के लिए, दूसरों को उत्तम बनाने के लिये। आज यह हमारा कर्तव्य नहीं कि हम अपने पन मे ही रमण करते चले जायें। यह हमारे जीवन की प्रतिभा नहीं कह रही है।

एक समय मेरी बालिका ने कहा हे प्रभु ! मैं यह जानना चाहती हूं कि हृदय से उदगान तो सभी उच्चारण करते हैं। एक मेरी प्यारी माता है वह अपने स्नेह और प्रेमवत हो अपने प्यारे बालक के व्याकुल होने पर लोरियों का पान करा देती है। और वह बालक शान्त हो जाता है। शान्त हो जाने उसको द्वितीय विडम्बना उत्पन्न होती है, जो स्नेह से शान्त माता करती है। मैं यह जानना चाहती हूं कि क्या यह जो वनराज है या पक्षीगण है उनका हृदय कैसे तपा

हुआ होता है? जो इस प्रकार के गान से सभी प्रभावित हो जाते हैं और सान्त्वना को प्राप्त हो जाते हैं। उस समय उसका उत्तर देना हमारे लिए स्वाभाविक बन गया था। मैंने कहा, "हे बालिका। मानव के हृदय का ध्यान और तप के द्वारा तपाया जाता है मेरी माता भी गर्भस्थल में, बालक को तपा देती है। कौन माता तपाती है? जो माता सुयोग्य होती है वह माता अपने बालक को गर्भ स्थल में विचारों से तपा देती है। आहार और व्यवहार से तपा देती है। वह ब्रह्म का चिन्तन करते हुए अपने बालक को अपने उदर में ऊंचा बना देती है। हे मेरी बालिका! तुम्हें यह ज्ञान होना चाहिए कि इसी प्रकार मानव के हृदय को महापुरूषों द्वारा तपाया जाता है। जैसे माता अपने उदर को तपाती है, गर्भ स्थल में बालक को तपा देती है। महापुरूषों के सत्संग में ही वह ब्रह्मचारी तप जाता है जिससे उसका हृदय इतना महान्, पवित्र बन जाता है कि वनराज भी उसके आधीन बन जाते है और पक्षीगण भी मुग्ध हो जाते हैं। उसका कारण यह होता है कि जिस मानव के ब्रह्मचर्य की ऊर्ध्वागति बन जाती है उसकी वाणी में, मस्तिष्क और प्रत्येक इन्द्रियों में एक भोलापन आ जाता है? उस भोले पन में ही उसके ब्रह्मचर्य की ऊर्ध्वगति बन जाती है और कैसा भोला पन आता है? उस ब्रह्मचारी के लिए प्रत्येक देव कन्या माता के तुल्य है, उसका मातृत्व ही उसके लिए आभूषण बन जाता है। क्योंकि वह वह सभी संसार की कन्याओं में, उस परमात्मा में, जो आनन्दमयी माता है उसे दृष्टिपात करने लगता है। उसके ब्रह्मचर्य की गति ऊर्ध्वा बन जाती है। इसीलिए हे पुत्री! उसे उद्गाता कहा गया है क्योंकि जब वह उद्गान गाती है तो वह बाल्य तप जाता है। बाल्य माता के द्वारा तपाया जाता है। मेरी बालिका ने कहा कि भगवन मैं यह जानना चहती हूॅ यदि में गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट हो जाऊ तो क्या मैं भी अपने बालक को तपा सकती हूं? परन्तु इस वाक्य का मेरे लिए उत्तर देना सहज नहीं था। तब यह कहा गया है कि बालिका वैसे तो विद्या में भी व्यापार का कार्य होता रहा है। परन्तु ब्रह्मवेता बनने के लिए किसी ब्रह्मवेता के सुकृत की आवश्यकता

होती है। जिससे बालक तपस्वी बनाया जा सकता है।

परमानन्द की प्राप्ति :

मेरी पुत्री कहा करती थी कि हे प्रभु! मैं चन्द्रमा की यात्रा मे सफल होना चाहती हूं। प्रभु! मैं मंगल की यात्रा में सफल होना चाहती हूं परन्तु मैं यह कहा करता था कि हे पुत्रवत! संसार में हमारी रसना का जो अग्र भाग है उसमें लगभग बयासी छिद्र होते हैं और उनमें कुछ छिद्र ऐसे होते हैं कि जिनका सम्बन्ध जगत में विचरण करने वाली औषधियों से होता है। बहुत से छिद्र इस प्रकार के होते हैं जिनका सम्बन्ध नाना प्रकार के रस स्वादनों से होता है। हमारी रसना के छिद्रों की गति को जानने के लिए इतनी ही गति छिद्र वाला हमें यन्त्र बनाना होगा तो हम चन्द्रमा की यात्रा में सफल हो जायेगें। परन्तु जब मेरी बालिका ने कहा कि हे प्रभु! आप मुझे निर्णय कराइये कि इन छिद्रों के नाम क्या हैं? इन छिद्रों को मुझे जानना है जिनसे चन्द्रवत् को प्राप्त हो करके मैं अपने आनन्दवत् को जानती ही चली जाऊ। मुनिवरों देखो ! उस समय मैं इस वाक्य को अच्छी प्रकार तो जानता नहीं था परन्तु मुझे उन प्रश्नों का उत्तर देने में बड़ी सुगमता रहती थी। इसका मूल कारण यह था कि रसना का जो अग्र भाग है इसके छिद्रों को कोई भी मानव जानना चाहता है तो तालु का जो अंग्र भाग है उसमें एक छिद्र में जब रसना के अग्र भाग को ग्रहण करते रहते हैं, उस छिद्र से रसना के छिद्रों का मिलान करने लगता हैं तो हमारी ह्रदय रूपी गुफा में एक आनन्द का स्त्रोत उत्पन्न होने लगता है मानो वह जो स्त्रोत है वह हमें ऐसा प्रतीत होने लगता है किं जैसे हमारा यह शरीर ही जड़वत् को प्राप्त हों रहा है और कहीं–कहीं चेतनावत् हम स्वयं अपने को अनुभव करने लगते हैं।

17 जनवरी 1970, बरनावा

महाराजा अश्वपति के वृष्टि याग :

उदगाता का निर्वाचन–मनु महाराज की लगभग एक सहस्त्र

प्रणाली में महाराजा अश्वपति अयोध्या में राज्य करते थे। मुनिवरों मुझे स्मरण है कि महाराजा अश्वपति के यहां वृष्टियज्ञ का आयोजन था। महर्षि चाक्रायण उस यज्ञ में उद्‌गाता बनने वाले थे। अश्वपति के यहां से मुझे भी यह निमन्त्रण आया कि यज्ञ में आना है तो उस समय मेरी कन्या की आयु केवल पांच वर्ष की थी। वह उस अवस्था में ब्रह्मवेता बनने के लिए तत्पर हो गयी थी। तो मेरे हृदय में यह इच्छा जागृत हुई कि यज्ञ में जाने के लिए इससे भी पूछा जाए। मैंने कहा हे पुत्री! तुम्हारी क्या इच्छा है? क्या तुम यहां आनन्द में रहना चाहती हो या यज्ञ में प्रवष्टि होना चाहती हो उसने कहा कि प्रभु! "यज्ञम् भगा प्रथम मम वेचः यशवानि ग्रंथतमम् वेचु न यज्ञं भगा वस्तु नमामी अस्वते।" यज्ञ भानम मधु कन्छनम् मेघो न देव ब्रह्मणें गुरू अश्वताः। हे गुरू जी! यह आपको भी प्रतीत है यह आपने भी जाना होगा कि यह जो यज्ञ है यह तो महापुरूष है, क्या मैं महापुरूष की शरण में नहीं जाना चाहती हूं? यह कैसे हो सकता है? आपको यह प्रतीत होगा कि महाराज दिग्ध ने यज्ञ के सम्बन्ध में याज्ञवल्वय की सभा में क्या कहा था? महाराज जमदग्नि ने महाराज कोडंग ऋषि के यहां क्या कहा था? यह आपको भी प्रतीत होगा कि गार्गी ने यज्ञ के सम्बन्ध में क्या कहा है? महर्षि भारद्वाज ने तो यज्ञ के सम्बन्ध में कहा है कि यज्ञ ही मानव का जीवन है यज्ञ ही मानव की प्रतिभा है यज्ञ को ही मानव क़े ज़ीवन का एक सार कहा है। इसके पश्चात भी मैं यज्ञ में प्रविष्ठ क्यों नहीं होना चाहूंगी? यह मैं कैसे उच्चारण कर सकती हूँ? यज्ञ तो सबसे श्रेष्ठपुरूष है।

जिस समय मैं और मेरी पुत्री महाराज अश्वपति के यज्ञ में पहुंचे उस समय ऋषि मुनियों का प्रश्न चल रहा था महर्षि जगदग्नि ने आर्ध भागा अस्तिति, चाक्रायण ऋषि से यह कहा कि महाराज देवता कितने है? तो उन्होंने देवताओं की गणना करते हुए उन्होंने कहा कि देवता तैतिस है। उन्होंने फिर प्रश्न किया कि देवता कितने है तों उन्होंने कहा देवता छः हैं। उन्होंने फिर प्रश्न किया कि देवता कितने हैं उन्होंने कहा कि देंवता तीन है उन्होंने फिर प्रश्न किया कि देवता कितने हैं तो उन्होनें कहा दो है। महर्षि जमदग्नि ने प्रश्न

किया कि देवता कितने हैं तो चाक्रायण अर्धभागा ऋषि ने कहा कि केवल एक देवता है। उन्होंने कहा कि यह जो यज्ञ है यही सर्वोपरी देवता है। संसार में एक देवता है यज्ञ। क्योंकि यहां संसार में जो भी कुछ हो रहा है, हमारी आपकी विचारधारा चल रही है यह भी यज्ञ है, हम जो भी शुभ कर्म करते हैं यह सब यज्ञ है। जब प्रश्न किया कि यज्ञ का देवता कौन? उन्होंने कहा कि यज्ञ का देवता ही मानों अश्वपति कहलाया गया है और मैं मानो यज्ञ का उद्‌गाता बनना चाहता हूं। उद्‌गाता का देवता अग्नि है। उन्होंनें कहा कि अग्नि का देवता मानो देखो भू है। उन्होंने कहा कि भू का देवता कौन है? भू का देवता अन्तरिक्ष भ्रवः है। अन्तरिक्ष का देवता कौन है? गन्धर्वलोक है। गन्धर्व लोक का देवता कौन है? गन्धर्व लोक देवता चन्द्रलोक है? चन्द्रलोक का देवता कौन है? चन्द्रलोक का देवता इन्द्र लोक है? इन्द्रलोक का देवता कौन है? इन्द्रलोक का देवता प्रजापति है। प्रजापति का देवता कौन है? प्रजापति का देवता यज्ञ कहलाया गया है।

मेरे प्यारे ऋषिवर! जब यह वाक्य मस्तिष्क में आते रहे तो चाक्रायण से पुनः प्रश्न किया कि अत्रि गोत्रि पुत्री मैं यह जानना चाहती हूँ कि यह जो तुम्हारा यज्ञ पुरूष है इसके लिए हृदय की उद्‌गमता तुम्हें क्या कह रही है? उस समय चाक्रायण ऋषि ने कहा कि समभेवतानी समभगवावस्तम्। हे ऋषि कन्या! मैं यही जो जानने आया हूं कि यज्ञ में मुझे क्या प्राप्त होता है? मैंने तो यह जाना है कि तुमने यह वाक्य अशुद्ध कहा है। उन्होंने कहा कि मैंने यह अशुद्ध इसलिए कहा है कि यदि मैं यह वाक्य उच्चारण न करती तो आपका मुझको निर्णय नहीं हो सकता। अब आप उद्‌गाता बन जाइये। चाक्रायण ने कहा कि यज्ञमान प्रश्न करें? उन्होंने कहा कि यज्ञमान प्रश्न करें या ना करें परन्तु तुम्हारा जो उत्तर है उद्‌गाता बनने के लिए यथार्थ है क्योंकि तुम उद्‌गाता के देवता को जानतें हों परन्तु मैं तुमसे एक वाक्य और जानना चाहूंगी कि तुम उद्‌गाता हो। कौन से उद्‌गम विचारों से अन्य आहुति दोगें? उन्होंने कहा पुत्री! मैं तीन

विचारों से आहूति दूंगा। तीन ही विचार मेरे समीप रहते हैं। तीन प्रकार की आहुतियां होती है संसार में यज्ञशाला में जो आहुति देता है वह तीन ही प्रकार की होती है। मानो एक राष्ट्रीय आहुति होती है एक ब्रह्म आहुति होती है और एक मानव आहुति होती है। तीन आहुति से यज्ञ करा सकूंगा। कन्या ने कहा कि राष्ट्रीय आहुति देव आहुति और मानवीय आहुति कैसी होती है? देव आहुति कैसी होती है चाक्रायण ने कहा– देवम् समाप्रथा ब्रह्मे अस्वाति लोकां चंचनम् वोकम् ब्रह्मे अस्वते।

जो देव लोक में जाने वाली आहुति है जिससे हम ब्रह्म को प्राप्त हो जाते हैं मानो देखो परा विद्या से और दूसरी विचार धारा 'राष्ट्रम् चटायम् चट्च्यप्रभे अस्वति नामाः यज्ञम् भेवता मानो जो यज्ञ में आहुति देने के पश्चात चटाचट होता है–चटाटच का अभिप्राय यह है कि मानव का जो शरीर है वह यज्ञ है। इस यज्ञ में जब राष्ट्रीय क्रान्ति आती है तो उसके हृदय में चटाचट होती है जैसे अग्नि में दी हुई आहुति चटाचट को प्राप्त होती है। इसी प्रकार मेरा जो यह शरीर हे यज्ञ है, इसमें जितनी भी चटाचट क्रान्ति होगी मेरे मस्तिष्क में उतना राष्ट्र पवित्र होगा। उतनी राष्ट्रीय क्रान्ति मानवत्व के लिये पवित्र होगी। यचयतानम् माम वेताम् ब्रह्मे अस्वति धारा मम वेचाः तृतीय आहुति है जो मनुष्यों में प्रतिष्ठित होती है। इसलिये मैं तीन विचारों से आहुति देना चाहता हूं। ऋषि कन्या ने कहा कि यथार्थ है यह वाक्य। तुम उद्गाता बन जाओं। अश्वपति ने चाक्रायण ऋषि से प्रश्न किया– सम् गातनम् मम वेचाः सम भवति मम् वेचिकृतम ममाः अस्वेति भागम् ब्रह्मे मेधवा च प्रधेः। उस समय अश्वपति ने कहा है ऋषि कन्या! मैं भी चाक्रायण ऋषि से कुछ प्रश्न करना चाहता हूँ। उन्होंने कहा कि कीजिए भगवन, तब वह आकृति कन्याम् ब्रह्मे अस्तानम् मेधा प्रभे अस्ति। अब देखो मुनिवरो। महाराजा अश्वपति ने उदगाता चाक्रायण से कुछ प्रश्न किये। उन्होंने कहा कि यह जो तुम बारम्बार स्वाह देते हो इसका क्या अभिप्रयाय है ? प्रत्येक वेद मन्त्र के साथ में स्वाह बोलते हो इसकी मीमांसा क्या है ? उस समय

महाराज चाक्रायण ने कहा समा ऋतम बधे पुनुरुक्तम ब्रह्मा स्वाह लोका प्रधे अस्ति मसुमना ग्रणाः। मैं जो स्वाह देता हूं वह इसलिये देता हूं कि मेरे हृदय में जो दृढ़ता आये जो नाना प्रकार की त्रुटियां है वह प्रत्येक आहुति के साथ में स्वाह कह करके जैसे सामग्री अग्नि में भस्म हो जाती है इसी प्रकार मेरी भी त्रुटियां नष्ट हो जाएं और मैं भी स्वाहः कह करके इस संसार की जो ब्रह्ममयी ज्योति है उसे मैं अपनाना चाहता हूँ। जो ब्रह्म रूपी अग्नि मेरे हृदय में धधक रही है उस अग्नि में आहुति दे करके अपने को चेतनित करना चाहता हूँ। महाराजा अश्वपति ने कहा कि यथार्थ है इनको उदगाता चुन लो। चाक्रायण को उद्गाता चुन लिया गया। उसके पश्चात् मुझे ब्रह्मा भी बनाया गया। महाराजा अश्वपति के पुरोहित अक्रेति अनावृत्तम् मानो देखो, वायु गोत्र में उत्पन्न होने वाले भोगद्ध ऋषि थे। वह वहां पुरोहित बनाये गये। इसके पश्चात् जब अर्ध्वयु का प्रश्न आया तो उस समय कहा गया कि इस कन्या को इस यज्ञ का अर्ध्वयु बनाया जाए।

अब प्रश्न किया गया कि हम तुम्हें अर्ध्वयु बनाना चाहते हैं। तुम अर्ध्वयु कैसे बनोगी? उस समय कन्या ने कहा हे महाराज अश्वपति वास्तव में मैं यह जानती तो नहीं हूं, परन्तु मैं यह अवश्य कह सकती हूं कि यज्ञशाला के पूर्व भाग में मुझे आसन दिया जाए। मैं अवश्य अर्ध्वयु के कर्तव्यों का पालन कर सकूंगी। अर्ध्वयु का अभिप्रायः है कि जिसकी ऊर्ध्वा गति होती है। सूर्य ही इस पृथ्वी मण्डल का अर्ध्वयु कहलाया जाता है। अर्ध्वयु का अभिप्राय है "उद्गम ब्रह्मे आस्वनि मानो जो शरीर में अग्नि प्रदीप्त हो रही है उस अग्नि का सूर्य से जब समन्वय हो जाना ही अर्ध्वयु की योग्यता है।"

अश्वपति की पत्नी के प्रश्न :

हे प्राणम! प्राचम् प्रभ अस्चतम् प्रजापति न पत्नि अस्वेति कन्या ब्रह्मे ऋषि पुत्रों वृत्यानम्।

अश्वपति की पत्नी ने कहा पुत्री मैं भी कुछ जानना चाहती

हूं। उन्होंने कहा कि प्रश्न करो। यजमान पत्नी ने कहा, "सामग्री का शाकल्य कैसा होता है? कौन से शाकल्य से तुम आहुति देना चाहती हो? तुम्हारा शाकल्य क्या है? उसने उत्तर दिया हे यज्ञमानः पत्नी! शाकल्य चौबीस प्रकार का होता है। जिससे यज्ञशाला में आहुति दी जाती है। उन्होंने प्रश्न किया कि हे पुत्री! तुम कौनसे शाकल्य से आहुति दोगी? उन्होंने कहा कि संसार में सत्रह प्रकार के शाकल्य होते हैं उनकी ही आहुति दी जाती है। उन्होंने पुनः से प्रश्न किया कि तुम कौन से शाकल्य से आहुति देना चाहती हो? उन्होंने कहा कि ग्यारह प्रकार के शाकल्य शरीर में होते हैं। मैं उनकी भी आहुति दूंगी। उन्होंने फिर प्रश्न किया कि तुम कौनसे शाकल्य से आहुति देना चाहती हो? उन्होंने कहा कि वास्तव में, मैं दस प्रकार के शाकल्य से आहुति दिलाना चाहती हूं। उन्होंने पुनः फिर प्रश्न किया हे पुत्री तुम स्वयं कौनसे शाकल्य की आहुति दिलाओगी तो उन्होंने कहा कि मैं एक शाकल्य से आहुति दिलाना चाहती हूं। उन्होंने कहा कि हे देवी! तुम इनकी मीमांसा करो जिससे तुम यज्ञशाला में अर्ध्वयु बनोगी?

पुत्री ने शाकल्यों के प्रकार की मीमांसा करनी प्रारम्भ की। उसने कहा कि तुम्हें प्रतीत है कि जब मानव को जन्म के पश्चात् संसार की जानकारी होती है तो उसे चौबीस प्रकार का हर्ष होता हैं सत्रह प्रकार के शाकल्य की व्याख्या करते हुए कहा कि जैसे हमारे यहां पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कमेन्द्रियां, पांच प्राण, मन और बुद्धि यह सत्रह तत्व है मैं इनका शाकल्य बना करके यज्ञशाला में आहुति देना चाहती हूँ। महारानी ने कहा तुम ग्यारह प्रकार से देना चाहती हो? उन्होंने (कन्या ने) कहा कि देखी मेरी– दस इन्द्रियां और मन इन ग्यारह का शाकल्य बना करके मैं आहुति देना चाहती हूं। उससे पूछा कि तुम एक प्रकार के कौन से शाकल्य से आहुति देना चाहती हो? मेरी पुत्री ने कहा कि मानो एक संकल्य से आहुति दिलाना चाहती हूं। जैसे प्रभु का एक संकल्य उसका यज्ञ है। इसी प्रकार में एक संकल्य से आहुति दिलाना चाहती हूं। उस समय यज्ञमान पत्नी ने

कहा कि इसको अर्ध्वयु बनाया जाए। उसके विचारों में कितनी उद्गमता होती है जिसकी उद्गता का कोई प्रमाण नहीं दिया जा सकता। जब यज्ञ प्रारम्भ होने लगा तब पापड़ी ऋषि यज्ञशाला में प्रविष्ट होने लगे। महाराजा अश्वपति ने उन्हें आसन प्रदान किया। ऋषि वहां विराजमान हो गये। उस यज्ञ में यज्ञामन सहित सभी का संकल्प था कि वृष्टि होनी चाहिए।

यज्ञ संकल्प से वृष्टि :

देखो मुनिवरो! यज्ञ में संकल्प बनाये जाते हैं। बाहरीय संकल्य और आन्तरिक संकल्य दोनों का समन्वय होने पर संसार में प्रभु की चेतना और संलग्नता जागरूक हो जाती है और संकल्प मात्र से ही वृष्टि का प्रारम्भ होने लगती है। यहां भी संलग्नता जागरूक हो जाने के पश्चात् वृष्टि प्रारम्भ होने लगी। तब प्रजा में एक हर्ष नाद होने लगा कि ऋषि परम्परा को धन्य है जो उनके मस्तिष्क में इस प्रकार की विचारधारा पहुंची। जब हर्ष नाद होने लगा तब ऐसा कहा जाता है कि अश्वपति के यहां छः माह तक यज्ञ चलता रहा। यज्ञ की पूर्णाहुति भी होनी थी। पूर्णाहुति के पश्चात् विराजमान होकर के वहां दक्षिणा का प्रश्न आने लगा। महाराजा अश्वपति ने अपनी पत्नी से कहा कि ब्रह्मा की दे उद्गाता की दे अर्ध्वयु की और पुरोहित की क्या दक्षिणा होती है?

मुनिवरों! जब दक्षिणा के सम्बन्ध में प्रश्न चलने लगे तो ब्रह्मा से यह प्रश्न किया गया ऋषिवर! मैं यह जानना चाहता हूँ कि तुम्हारी दक्षिणा क्या होगी? उस समय ऋषि ने कहा था कि मैं दक्षिणा क्या लूं? जो तुम देना चाहते हो दे दो। उन्होंने कहा कि जो दक्षिणा है, उसी दक्षिणा को मुझसे प्रश्न करो मैं उसे देने के लिये उद्वित रहूंगा। मैं वास्तव में उस चेतना का इच्छुक हूं तुम उन शब्दों को उच्चारण करो और शब्द के साथ में मैं दक्षिणा प्रदान करूं। ऋषि ने कहा तो मैं यह चाहता हूं कि तुम अपने हृदय का जो संकल्प है उस संकल्प की दक्षिणा मुझे अर्पित कर दीजिये। उस समय अश्वपति ने कहा कि बहुत सुन्दर महाराज! मैं उसका संकल्प अवश्य करूंगा, मैं उसकी

दक्षिणा अवश्य प्रदान करूंगा। मानो ब्रह्मा की कोई दक्षिणा नहीं होती। ब्रह्मा की दक्षिणा केवल यज्ञमान का संकल्प, उसकी त्रुटियां होती हैं। इसी प्रकार पुरोहित से प्रश्न किया गया कि आप क्या दक्षिणा लेंगे? उन्होंने कहा कि मैं यह दक्षिणा लेना चाहता हूं कि यह जो तुम्हारा जीवन है यह यज्ञमय बना रहे। मैं इस दक्षिणा को चाहता हूं। उद्गाता से कहा कि हे चाक्रायण तुम क्या दक्षिणा लेना चाहते हो जो वाक्य उच्चारण करोगे मैं वही दक्षिणा प्रदान करूंगा। उन्होंने कहा कि मैं यह चाहता हूं कि मेरे जो उद्गम विचार हैं, मेरा जो उद्गान है वह तुम्हारे गृह में सदैव बना रहे। उन्होंने कहा कि बहुत सुन्दर भगवन्। मैंने इसको प्रदान कर दिया है। उस समय अर्ध्वयु से कहा गया कि हे पुत्री तू क्या चाहती है? उसने कहा कि मैं यह दक्षिणा चाहती हूं कि मैंने जो यह नाना चौबीस प्रकार के संकल्य के साथ में जो शाकल्य से आहुति दिलाई है। मैं इसकी दक्षिणा लेना चाहती हूं। यह चौबीस प्रकार की प्रतिभा मुझे अर्पित कर दीजिए। जो मेरे गृह, मेरे राष्ट्र में सदैव बनी रहे। जिससे यह राष्ट्र ऋषियों का बन जाये। अध्वर्यु कन्या ने कहा कि वास्तव में मैंने यह सब दक्षिणा प्रदान कर दी हैं।

यज्ञमान पत्नी यज्ञशाला में एक आसन पर स्थिर हो गई और ब्रह्मा से कहा कि तुम मुझसे क्या दक्षिण चाहते हो? ब्रह्मा ने कहा कि देवी ! तेरे हृदय में जो मानवीयता की अग्नि प्रदीप्त हो रही है वह अग्नि इस प्रकार धधकती रहे। इस अग्नि को मुझें दक्षिणा में दीजिये। मैं तेरे से यह दक्षिणा चाहता हूं कि यह अग्नि कभी शान्त न होने पाये। उन्होंने कहा कि मैंने यह दक्षिणा प्रदान कर दी।

अश्वपति पत्नी ने पुरोहित से कहा कि हे पुरोहित देवता तुम मेरे से क्या दक्षिण चाहते हो ? पुरोहत ने कहा हे–देवी। मै तेरे से यही दक्षिणा चाहता हॅू कि तेरे गर्भ से जिस बालक का जन्म हो उसमें और तेरे में कोई अन्तर नहीं होना चाहिए। उन्होंने कहा कि मैंने यह भी दक्षिणा आपको प्रदान कर दी।

अब यज्ञमान पत्नी ने उद्गाता से प्रश्न किया कि तुम मुझसे

क्या दक्षिणा लेना चाहते हो? उदगाता महर्षि चाक्रायण ने कहा कि मैं तुमसे यह दक्षिण में लेना चाहता हूँ कि तुम्हारे राष्ट्र में जो भी पुत्रियां हो वह किसी प्रकार के दुराचार में न फंसे। यह जो मेरे उदगम विचार है जिनमे मैंने, पुरोहित और अर्ध्वयु ने आहुति दिलायी है। यह तुम्हारे राष्ट्र की कन्याओं के समीप बने रहे। अश्वपति की पत्नी ने कहा बहुत सुन्दर यह भी मैंने तुम्हें प्रदान कर दी।

यज्ञ की अर्ध्वयु ऋषि कन्या से यज्ञमान पत्नी ने कहा कि हे देवी। वैसे तो तू आयु में सूक्ष्म है, परन्तु यज्ञ का अर्ध्वयु होने से माता के तुल्य है। तुम क्या दक्षिण में चाहती हो? समागच्छम् ब्रह्मे व्यापनोति तम ब्रह्मणे वाचा ब्रह्मणे जातनीति कामाः वृध्यम् ब्रह्में। हे देवी! तेरी मेरी एक जाति है। मैं तुम्हं क्या दक्षिणा प्रदान कर सकती हूं?

अर्ध्वयु ने कहा कि यहां जाति का प्रश्न नहीं है यहां यज्ञ की दक्षिणा का प्रश्न है। तो तुम क्या चाहती हो? अर्ध्वयु ने कहा कि मैं यह चाहती हूँ "सम भवेतानम् चतरूत लोकाः अश्वेति भागम् ब्रह्मणे आचाः"। जातियता के नाते नहीं, अर्ध्वयु के नाते। उच्चारण कर सकती कि तुम्हारा और मेरा दोनों का समन्वय हुआ है। तुमने मुझे ऐसे सुन्दर यज्ञ का अध्वर्यु बनाया है साकल्य का स्वामी बनाया है। मैं यह चाहती हूं कि मैंने जो इस प्रकार के साकल्य को बनाया है तुम्हारे इस राष्ट्र में और तुम्हारे ही द्वारा तुम्हारी जठराग्नि में साकल्य शुद्ध पवित्र होगा तो इसी प्रकार का साकल्य बना रहेगा। चरित्र रूपी जो साकल्य है वह तुम्हारा बना रहेगा तो तुम्हारे अश्वपति का राष्ट्र पवित्र रहेगा। मैं यह दक्षिणा चाहती हूँ। उन्होंने कहा है। मातेश्वरी ! मैंने तुम्हे प्रदान कर दी।

धन दक्षिणा :

दक्षिणा का प्रश्न तो समाप्त हो गया परन्तु जब सब अपने अपने गृह को प्रस्थान करने लगे तो महाराजा अश्वपति ने अपनी पत्नी से कहा कि देवी! अब द्रव की प्रदानता होनी चाहिये क्योंकि दक्षिणा तो हमने प्रदान कर दी और दक्षिणा हमारी पूर्ण होनी चाहिए जो हमने दी है। परन्तु अब हमें इनको कुछ द्रव्य भी देना चाहिए।

[illegible] के लिए [illegible] दक्षिणा भी [illegible] प्रविष्ट [illegible] महाराज [illegible] स्वीकार कर [illegible] उन्होंने भी [illegible] रहते [illegible] स्वर्ण [illegible] गया।

अध्वर्यु को जब दक्षिणा दी जाए, इसके प[illegible] आया। अध्वर्यु को जब दक्षिणा यजमान अश्वपति [illegible] तब उनकी पत्नी ने प्रसन्न होकर कहा कि महाराज [illegible] जितना है उतनी ही बुद्धिमान अध्वर्यु है। इसको भी [illegible] एक सहस्र मुद्रा और एक सहस्र गऊएं प्रदान की [illegible] अश्वपति ने कहा कि देवी! ऐसा नहीं होना चाहिए [illegible] गऊएं हमने किसी को प्रदान नहीं की है। इसलिए [illegible] गऊएं देना योग्य नहीं है। यजमान पत्नी ने कहा भग[illegible] है आयु में कितनी सूक्ष्म है और इसका ज्ञान कितना प्र[illegible] दक्षिणा ज्ञान से देना चाहते हो अथवा आयु से देना चा[illegible] मैं नहीं जान पायी। अश्वपति ने कहा कि देवी! हमें दक्षि[illegible] ही देनी चाहिए इनको परन्तु ज्ञान किसी का सूक्ष्म नहीं है [illegible] हमारा सौभाग्य है कि हम इनके चरणों की वन्दना कर सके [illegible] जितना हम दे सकें उतना ही कम है परन्तु देना चाहिए। सा[illegible] के हठ के साथ अध्वर्यु को एक सहस्र स्वर्ण मुद्राओं से यु[illegible] और गऊएं प्रदान करने लगे तब ऋषि कन्या ने कहा कि मैं [illegible] स्वीकार नहीं करूंगी। क्योंकि यह मेरे योग्य नहीं है, न मु[illegible] सहस्र गऊएं चाहिए। न मुझे यह स्वर्ण का द्रव्य चाहिए। मैं [illegible] चाहती हूं कि मेरा ज्ञान ऐसे ही प्रदीप्त रहना चाहिए। यजमान [illegible] कि नहीं तुम्हें यह स्वीकार करना होगा। अध्वर्यु ने कहा

स्वीकार नहीं करूंगी। इसे लेकर मैं अपमानपूर्ण [illegible] तुम्हारे यज्ञ में विघ्न आ जायेगा, यज्ञ में किसी [illegible] होनी चाहिए। अध्वर्यु का यज्ञशाला में आगमन [illegible] जाना है। जब यह वाक्य महाराज अश्वपति ने [illegible] उन्होंने कहा कि यह मैं कैसे स्वीकार करूं [illegible] स्वीकार योग्य है। परन्तु हम तुम्हें क्या प्रदान [illegible] जो आपकी इच्छा हो। अश्वपति ने कहा कि [illegible] कर चुके है। अब तुम अपनी इच्छा प्रकट करो। [illegible] मेरी इच्छा यह है कि जितना द्रव्य आपने [illegible] मुझे प्रदान कर दीजिए, क्योंकि मैं उसी का अधिकारी [illegible] 'अधिकार-अनाधिकार का प्रश्न भी रहता है। [illegible] मुद्रा प्रदान की गयी। जिसे लेकर उन्होंने [illegible]

दक्षिणा लेने पर गुरू से कन्या का मत भेद :

मार्ग में जाते हुए मुझसे कन्या प्रश्न कर रही थी, [illegible] इस स्वर्ण के रथ का आप क्या करोगें? आपको [illegible] है आप तो वस्त्र भी ग्रहण नहीं करते। आपने इस यज्ञ [illegible] को अपनाया है और इतने द्रव्य को ग्रहण कर लिया। इस [illegible] आप क्या करोगें? उन्होंने कहा कि देवी! यह हमारे कार्यो में कार्य आयेगा। गुरू जी आप क्या कार्य करोगे? मैंने कहा [illegible] द्रव्य कोई सम्पदा तो नहीं है परन्तु यह हमारे पालन पोषण में कार्य आ जायेगा। पालन पोषण भी एक वास्तविक आवश्यकता होती है। पुत्री ने पूछा तो भगवन्! इससे पूर्व आप क्या कार्य करते थे? आपके शरीर का पालन पोषण कैसे होता था? उन्होंने कहा कि देवी इसके लिए प्रायः प्रभु देता ही है। पुत्री ने कहा हे भगवन्! यदि हम इस द्रव्य को त्याग दे तो क्या प्रभु अब आगे नहीं देगा? उन्होंने कहा कि पुत्री! अवश्य प्रदान करेगा परन्तु यजमान से जो हमे प्राप्त हुआ है वह हमारे पालन पोषण के कार्य आ जायेगा, तो यजमान का संकल्प पूर्ण हो जायेगा। उसका पूरा होना भी बहुत अनिवार्य है। पुत्री ने पूछा, तो क्या प्रभु! मैं यह स्वीकार कर सकती

हूं कि मैं इस द्रव्य को अपनाकर चलू? उन्होंने कहा पुत्री अपनाओं या न अपनाओं परन्तु तुम्हें यह वाक्य स्वीकार करना होगा कि महाराजा अश्वपति के यहां से जो वस्तु हमें प्राप्त हुई है वह हमारे लिए बहुत उपयोगी है। वह उनका संकल्प है उसी संकल्प के साथ हमारे जीवन का पोषण भी होगा। पुत्री ने कहा चलिये भगवन्।

परन्तु जब पुत्री से न रहा गया तो मार्ग में ही रथ को स्थिर कर दिया और मुझसे कहा कि आप यज्ञ के ब्रह्मा बने थे। मेरे प्रश्नों का उत्तर दो उसके पश्चात रथ मार्ग से आगे चलेगा। मैंने कहा कि पुत्री विराजमान हो जाओ। हम दोनों विराजमान हो गये तो पुत्री ने कहा कि भगवन्! आपने मेरे से कहा था कि जो प्रकृतिवाद है जो द्रव्य है यह विनाश का कारण बन जाता है। फिर आपने इस विनाश के कारण को क्यों अपना लिया ? उन्होंने कहा कि हे देवी ! यह मार्ग जो हमने अपनाया है विनाश का वास्तविक मार्ग नहीं है। विनाश का मार्ग उस काल में बनता है जब हम इस प्रकृतिवाद में संलग्न और सक्रिय हो जाते हैं। हम इसमें संलिप्त नहीं है। हम इससे पृथक भी है और संलग्न भी है। पुत्री ने कहा भगवन्! आप पृथक कैसे हैं ? मैंने कहा कि पुत्री ! हमारा कौन सा अंग तुम इसमें संलग्न दृष्टिपात कर रही हो ? पुत्री ने कहा अंग तो नहीं परन्तु आपके मन की भावना क्या कह रही है? आपने इस द्रव्य को मन से अपना लिया है। मेरे विचार में तो यह आता है कि यह द्रव्य अश्वपति के राष्ट्र के लिए अर्पित कर दिया जाये। उस समय मैंने कहा कि पुत्री! ऐसा नहीं होगा। ऐसा करना हमारे लिए असम्भव है। क्योंकि यह यज्ञ की दक्षिणा है। यज्ञ की दक्षिणा को इस प्रकार वापस करना हमारे लिए योग्य नहीं है। पुत्री ने कहा तो भगवन्! मैं तो आगे नहीं जाऊंगी। मैं यही आसन लगाऊंगी। क्योंकि मैंने अपने पूर्व वाक्यों में गलत आचरण करने पर ऋषि कन्याओं को भारद्वाज गोत्रियों, मुद्गल गोत्रिय को धिक्कारा है। अब मैं इस आचरण पर क्या उत्तर दे सकूंगी?

ऋषि ने कहा है पुत्री! यहां धिक्कारने का प्रश्न नहीं है। यह

तो हमारी संकल्प शक्ति का प्रश्न है। इसमें तुम्हारा विवाह नहीं होना चाहिए। उन्होंनें कहा तो भगवन्! अब कैसे हो? मैंने कहा कि चलो अपने आश्रम में चलेगें वहां जैसी भी इच्छा हो वैसा ही कार्य होगें। तुम्हारे जो विचार है उससे मेरा विचार कदापि भी पृथक नहीं।

कन्या ने उस रथ को लेकर प्रस्थान किया। सारथी से कहा कि रथ को अपूत दिशा में ले चलो। मानो प्राचीदिग् दिशा में उस रथ का गमन कराया। उसी दिशा में आश्रम था। जब आश्रम में प्रविष्ट हो गये तो नाना ऋषि बालिकाएं–पुत्राणी सब आयी कि आज ऋषि आश्रम में यह क्या आया है? क्योंकि कन्याओं ने ऐसा रथ कदापि भी दृष्टिपात नहीं किया था। जब उन्हे राष्ट्र में जाने का सौभाग्य ही प्राप्त नहीं हुआ तो उसको दृष्टिपात करने का सौभाग्य भी कैसे प्राप्त हो सकता था। यह सब कुछ होने के पश्चात प्रश्न उत्तर होने लगे कि महाराज यह क्या है? तो उत्तर देते हुये कहा कि रथ है, इसमें द्रव्य है, अश्वपति के यहां से प्राप्त हुआ है। उन्होंने कहा कि बहुत सुन्दर। हम स्थिर हो गये। रात्रि छा गई और विश्राम की मुद्रा में चले गये। अर्धरात्रि का जब काल आया, मूल नक्षत्र उदित हो चुका था। पुत्री ने पुनः प्रश्न किया कि महाराज! इस द्रव्य का क्या करोगें ? इस द्रव्य को प्रदान कर दों यह द्रव्य हमें नहीं चाहिए। यह द्रव्य देवताओं के लिए कलंक है। इस जीवन को कलंकित बनाने का आपका हमारा कर्तव्य नहीं है। उस समय मैंने पुत्री से कहा कि तुम मेरे आसन से चली जाओ। जहां से तुम आई भी वही चली जाओ। अन्यथा तुम्हारा मस्तिष्क फट जायेगा। कन्या ने कहा कि भगवान्! मेरा मस्तिष्क फट जायेगा? कैसे फट जायेगा? मैंने कहा कि तुम इस विषय में अति प्रश्न करने लगी हो। अति प्रश्न करना ही तुम्हारे मस्तिष्क के दो भाग हो जाना है। कन्या शान्त हो गयी।

जब रात्रि समाप्त हो गई। रात्रि में फिर कोई प्रश्न उत्तर नहीं चला। दिवस आया परन्तु दिवस में भी कोई प्रश्न उत्तर नहीं चला क्योंकि शिष्या के लिए भयभीत हो जाना स्वभाविक हो जाता है। पुनः जब रात्रि आई तो मैंने कहा कि हे पुत्री! तुम्हारी इच्छा क्या है ? उन्होंने कहा कि भगवन्! मेंरी इच्छा यह है कि ब्रह्मवेताओं को

कलंकित नहीं होना चाहिए। ब्रह्मवेत्ता के लिए दो कलंक होते हैं--एक द्रव्य कलंक, होता है और दूसरा भोग। नाना प्रकार की जो विकृतियां हैं वह उसके चरित्र के लिए महाकलंक है। इसके पश्चात् जो लोकेषणा है वह भी उसके लिए कलंक है द्रव्य के तीन कलंक अपनाने से आप कलंकित होते हैं। इसलिए इसे नहीं अपना चाहिए। तो मैंने पूछा तो अब क्या करना चाहिए? उस कन्या ने कहा इस द्रव्य को महाराज अश्वपति को वापस दीजिये अन्यथा इसको ऋषियों में दान कर दीजिये। ऋषियों को यदि प्रदान नहीं करते तो भिक्षुओं को प्रदान कर दो। यदि भिक्षुकों को भी नहीं देना चाहते तो नदी में अर्पित कर दो, नाना प्रकार के प्राणी इस स्वर्ण को पान कर जायेंगे। जब यह कहा गया तो मेरा हृदय दहल गया था, क्योंकि मैं यज्ञ का ब्रह्मा बना था और ब्रह्मा को दक्षिणा प्रिय होती है उस समय मैंने कहा पुत्री ! तुम्हें जो यह एक सहस्त्र द्रव्य मुद्रा के रूप में प्राप्त हुआ है क्या तुम इसको भी अर्पित कर सकोगी? उसने कहा कि प्रभु! यह तो मेरे किसी कार्य का नहीं है। क्योंकि आप भी नग्न रहते हो और मैं भी लगभग नग्न रहती हूं दोनों के कार्य में यह द्रव्य आता ही नहीं। हम दोनो में विशेषता यही है कि मैं आपकी प्यारी सूक्ष्म पुत्री हूं। आप मेरे गुरू हैं हम दोनो की विडम्बना साथ-साथ नहीं चल पायेगी।

मुनिवरो देखो ! परिणाम यह हुआ कि वह सब द्रव्य सरयू के तट पर भिक्षुओं को दान कर दिया गया और स्वर्ण का रथ हम दोनों अश्वपति को अर्पित करने चल दिये तो पुत्री ने कहा कि भगवन् आप जाये अश्वपति को रथ अर्पित कीजिये। आप यज्ञ के ब्रह्मा बने थे। आपको रथ दिया गया था। मैंने कहा कि मैं रथ के सथ नहीं जाऊंगा क्योंकि मुझे लज्जा आती है। जो यज्ञ की दक्षिणा है उसको वापस करना हमारा कर्तव्य नहीं है। पुत्री ने कहा तो मैं जा रही हूं भगवन्। उस समय कन्या रथ के साथ में अश्वपति के पास चली गई। उसने अश्वपति से कहा कि महाराज! यह मेरे पूज्यपाद ने रथ आपको वापस किया है। अश्वपति ने कहा कहा कि हे ऋषि कन्या मैं इसको नहीं अपनाऊंगा। कन्या ने कहा कि और कौन इसको अपनायेगा?

अश्वपति ने कहा कि ऋषि इसको अपनाये। यहीं देखो इस पर भ्रमण करें। कन्या ने कहा कि इस पर कोई भ्रमण नहीं करेगा। यह आपका रथ है इसे स्वीकार कीजिये। उन्होंने कहा कि मै तो स्वीकार नहीं करूंगा। यह मेरा संकल्प है। कन्या ने कहा तो जाओ यदि यह संकल्प यज्ञमान का है तो यहां अर्ध्वयु का भी संकल्प है तुम अर्ध्वयु के संकल्प से इसे स्वीकार कर लो। उन्होंने कहा कि मैं इसे स्वीकार नहीं करूंगा। यदि ब्रह्मा मुझे पुनः संकल्पित करें तो मैं इसे स्वीकार कर सकता हूं। तुम अर्ध्वयु हो। मैंने तुम्हे एक सहस्त्र मुद्रा दी थी तुम उनको संकल्प कर सकती हो और उसे मैं स्वीकार कर सकता हूं। परन्तु रथ के संकल्प को मैं पुनः से अपने में अपनाता चला जाऊंगा इसका मुझें अधिकार नहीं है। देखों यह जटिल वाक्य पुत्री के समीप आया। उसने कहा कि मैं अभी जाती हूं ओर अपने पूज्य गुरूदेव को प्रस्तुत करती हूं। इसका आपको संकल्प लेना ही होगा। उन्होंने कहा कि जाओ ब्रह्मा जी से कहो मेरे लिये वह संकल्प दे देवे उनसे मैं इस संकल्प को अवश्य ले सकता हूं। क्योंकि उनका संकल्प मुझे प्राप्त हो जायेगा मेरा संकल्प उन्हें प्राप्त हो गया है। मानो जैसे द्रव्य का संकल्प ब्रह्म को प्राप्त हो गया दोनों का संकल्प मिलकर के एक संकल्प बन गया है। मैं ऐसे स्वीकार कर सकता हूं।

अब वह बहुत तीव्र गति से चलकर मेरे समीप आयी और मुझसे कहा कि महाराज अब आप इस रथ का अश्वपति को संकल्प कराइये। मैंने कहा कि पुत्री! मैं नहीं जाऊंगा। मैंने पुनः कहा है कि उसे मैं संकल्प नहीं कर पाऊंगा। उसने कहा कि यदि नहीं जाओगे तो मैं इसके लिए अपने प्राणों को अर्पित कर सकती हूं क्योंकि यह हमारे लिए कलंक हे जो हमें अच्छा नहीं लगता। उसको अवश्य अर्पित करना चाहिये। मैंने कहा कि तुम प्राणों को किसी भी काल में नहीं त्याग सकती। तुम ब्रह्मवेता कहलाती हो? ब्रह्मवेता यह कहता है कि तुम प्राणों की आहुति कैसे दे सकती हो? क्योंकि जो तुम्हारा नहीं है। प्राण सदैव रहने वाला है प्राण विश्व में सर्वत्र ओत–प्रोत है। इस शरीर को त्याग करके जाओगे तभी प्राणों के साथ में चले जाओगें तुम्हें यह प्रतीत नहीं है? तुम कौन से प्राण

को त्यागना चाहती हो। उस समय पुत्री ने कहा कि मैं उस प्राण को त्यागना चाहती हूं जिससे तुम्हें मैं दर्शन न दे सकूं। मैंने कहा कि ब्रह्मे योगक प्रभे अस्सित। तुमने योग की मुद्राओं को दृष्टिपात नहीं किया। योग में कोई बात असम्भव नहीं है योग में यह आता है कि यदि तुम सूक्ष्म शरीर में रहोगी वहां भी वार्ता प्रकट हो सकती है। यदि तुम कारण लिंग में चली जाओ तो मुक्ति को प्राप्त हो करे कारण लिंग में भी हम वार्ता प्रकट कर सकते हैं। तुम कहां जाओगी प्रभु के क्षेत्र से कोई मानव पृथक् नहीं है। जब यह वाक्य आया तो देखो ब्रह्मवेत्ता जो कन्या थी और मानो देखों शिष्या भी थी निरुत्तर हो गई। जब कोई उत्तर न बन सका तो अन्त में उसने यह कहा कि आप संकल्प करायें। मैंने कहा कि तुम्हारे कथनानुसार संकल्प करा सकता हूं परन्तु जहां तक प्राणों के त्यागने का प्रश्न है यह आगे से किसी के आगे उच्चारण नहीं करना। क्योंकि हताश होना ही संसार में मृत्यु है। तुमने यह कैसे स्वीकार कर लिया कि मेरे पूज्य गुरूदेव मेरे कथनानुसार कार्य नहीं करेगें। मैं अवश्य करूंगा। जो मेरे और तुम्हारे दोनों के लाभ का है और जहां प्रतिष्ठा का प्रश्न आता है, वहां त्याग करना चाहिये। क्योंकि त्याग में जीवन है। पुत्री चलो। दोनों ने प्रस्थान कर दिया। अश्वपति के यहां पहुचे। महाराजा अश्वपति ने अपने आसन को त्याग कर ऋषि को राज सिंहासन पर विराजमान करने के पश्चात् दोनों पति–पत्नी ने उनके चरणों को स्पर्श किया। ऋषि ने कहा कि अश्वपति। मैं इस रथ का संकल्प करना चाहता हूँ। महाराजा अश्वपति ने कहा, बहुत सुन्दर मैं आपसे संकल्प स्वीकार करूंगा। क्योंकि पूजनीय ऋषियों से ही संकल्प स्वीकार नहीं करूंगा तो और किससे करूंगा? मेरे लिए तो यह बड़ा सौभाग्य है। वहां ऋषि अपना संकल्प अपिर्त करके अपने आश्रम में प्रविष्ट हो गये।

1 नवम्बर 1969, बरनावा

मुद्गल गोत्रिय ऋषियों की जन्मदात्री माता सोमलता

पति–पत्नी दोनों का कर्तव्य होता है कि हम संसार में अपनी आत्मीयता को ऊंचा बनायें। यह मानव जीवन एक रथ के तुल्य है ऐसा ऋषियों ने सिद्ध किया है और उसका उपार्जन भी किया है।

मुझे स्मरण आता रहता है पुत्रो! महर्षि मुद्गल गोत्र में एक शेष रेणु नाम के ऋषि हुए। उनकी पत्नी का नाम सोमलता था। गृहस्थ में प्रवेश के बाद उन्होंने दो सन्तानों को जन्म दिया और दोनों पति–पत्नी ने उन्हें ब्रह्मवेत्ता बनाया। उन्हें आध्यात्मिक ही नहीं भौतिक विज्ञानवेत्ता भी बनाया। उसके पश्चात् दोनों पति–पत्नी भयंकर वन में चले गए और विचारने लगे कि तप क्या है? क्योंकि दोनों वैज्ञानिक थे वेद की मीमांसा को जानते थे। वेद के एक–एक मन्त्र को ले करके वे तप करने लगे। तप करने के पश्चात् उन्होंने याग किया। अग्निहोत्र की समिधाएं एकत्रित कर साकल्य से स्वाहा करने लगे। जितना साकल्य अग्नि से रूपान्तर होता तो उन परमाणुओं को यंत्रों में एकत्रित करते और उन परमाणुओं का मिलान करते। दोनों वैज्ञानिक बन भौतिक विज्ञान में प्रवेश कर गए। परमाणुओं का मिलान करते–करते वे यंत्रों में दृष्टिपात करते थे कि उनके मुखारबिन्द से जो शब्द उत्पन्न होता था, शब्द अग्नि की तरंगों पर विद्यमान हो करके मानो उनका जो मानवीय चित्र था वह उन्हें उस यन्त्र में दृष्टिपात आने लगा। दोनों पति–पत्नी याग करते और अपने स्वरूप को उन यन्त्रों में दृष्टिपात करते।

एक समय सोमलता बोलीं कि हे ऋषिवर ! हम यह जानना चाहते हैं कि जैसे हमारा यह चित्र इसमें आता है, क्या और भी कुछ चित्र इसमें आ सकते हैं। जब वह और आगे विज्ञान में प्रवेश कर गए तो उनके जो सातवें महापिता थे, जो अब शरीर में नहीं थे किन्तु

उनके शब्द वायुमण्डल में भ्रमण कर रहे थे। उनके चित्र उन्हें उस यन्त्र में दृष्टिपात आने लगे। उन्होंने अनुसन्धान करते–करते इस प्रकार उस विज्ञान में गति की, कि आगे अपने आठवें महापिता के दर्शन करने लगे और उन्होंने सौवें महापिता तक के दर्शन किए। आगे विज्ञान में पहुंचे सहस्त्रों वर्ष पूर्व जो पूर्वज समाप्त हो गए थे बेटा ! उनके चित्र भी उन्हें दृष्टिपात आने लगे।

विज्ञान कितना विशाल है –

जब वे वेद मंत्र के ऊपर अनुसंधान करने लगे तो जानने लगे कि जैसे मानव के शरीर की रचना से पूर्व पिण्ड का गर्भ में निर्माण होता है, मेरे प्यारे जो माता–पिता सुशोभित संतान को जन्म देना चाहते हैं तो उनके विचारों में मस्तिष्क में पूर्व में ऐसी सन्तान का चित्र बन जाता है। क्रियाओं से पूर्व चित्र बन जाता है। उसके पश्चात् सन्तान का निर्माण होता है जैसे गृह के निर्माण से पूर्व, गृह का चित्र मानव के मस्तिष्क में ओत–प्रोत होता है और उसके पश्चात् उसका निर्माण करता है।

माता सोमलता अपने बाल्यों को जब अपनी लोरियों का पान कराती और अपने प्यारे पुत्रों के श्रोतों में दर्शन की चर्चायें देती रहतीं, तो वह दर्शनों की विवेचना बाल्य के हृदय में प्रवेश कर जाती और बाल्य महान् बन जाते, तो माता अपने में स्वयं को धन्य स्वीकार करने लगती।

5 मार्च 1976 लाक्षागृह वरनावा।

जो माता–पिता अपने गृह को स्वर्ग बनाना चाहते हैं, तो पहले स्वयं अपने में सुसज्जित बनें। स्वयं मानवता को लेकर के वह अग्रणी बनते चले जाएं। उसका गृह स्वर्ग बन जाएगा, आनन्दयुक्त हो जायेगा।

21 मार्च 1978 मुजफ्फरनगर

याज्ञिक इंजी. चन्द्रहास जी के परिवार का संक्षिप्त परिचय

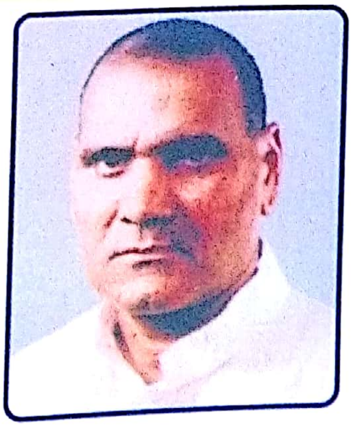
श्री महीपाल सिंह दलाल, निवासी– ऊन, जिला– शामली (उ0प्र0), 90 वर्ष की आयु में भी निरोग एवं सक्रिय हैं। उनके सुयोग्य सुपुत्र इंजीनियर श्री चन्द्रहास जी (सेवानिवृत्त महाप्रबन्धक– बीएसएनएल) एवं पुत्रवधू श्रीमती अनीता सन् 1992 से पूज्यपाद ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी की पावन प्रेरणा से दैनिक संध्या, उपासना एवं यज्ञ करते हैं तथा उनके प्रवचनों का स्वाध्याय करते हैं। इनका कहना है कि इससे इनकी तथा इनके परिवार की गति ऊर्ध्वगामी बनी है। पूज्यपाद ब्रह्मचारी जी के प्रवचनों को अपनी जीवनचर्या में क्रियात्मक रूप देने का इनका प्रयास रहता है। बरनावा में आयोजित होने वाले चतुर्वेद पारायण महायज्ञ एवं मेरठ में आयोजित यज्ञों में इनका यजमान बनना तथा सर्वाधिक सहयोग देना निश्चित रहता है।

इनके सुपुत्र **श्री शेखर दलाल** (आई.ए.एस.) जिलाधिकारी (महाराष्ट्र) प्रतिवर्ष आचार्य अरविन्द शास्त्री (बरनावा) के ब्रह्मत्व में वेद पारायण यज्ञ कराते हैं।

दलाल दम्पत्ति ने अपनी पुत्री **सौभाग्यवती आंचल** (आई. पी.एस.) एवं **चि0 जितेन्द्र** (आई.ए.एस.) के शुभ विवाह दिनांक : 24 नवम्बर 2019 के पावन अवसर पर इस पुस्तक के प्रकाशन हेतु **रुपये 11000/– (ग्यारह हजार)** का सात्विक दान देकर पुण्यकार्य किया है, जिसके लिए आर्यावर्त प्रकाशन उनका हार्दिक आभार व्यक्त करता है तथा उनके सपरिवार दीर्घायुष्य, श्रीसम्पदा, यश, वैभव व सुकीर्तियुक्त मंगलमय जीवन की प्रभु से कामना करता है।

ओं स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव।
पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि।।

पुनश्चः मंगलकामनाएं.....



आधुनिक युग के प्रखर वेदवक्ता

पूज्यपाद ब्रह्मर्षि

कृष्णदत्त जी महाराज

'रामायण' और 'महाभारत' भारतीय साहित्य तथा दर्शन के दो प्रमुख ग्रन्थ हैं। रामायण में आर्य संस्कृति व सभ्यता के उत्कर्ष का वर्णन है। रामायण का काल लगभग ८.५ लाख वर्ष पूर्व माना जाता है।

पूज्यपाद ब्रह्मर्षि श्री कृष्णदत्त जी महाराज इस युग के अद्भुत वेदवक्ता थे। उन्होंने अपने वैदिक प्रवचनों में रामायण युगीन संस्कृति व कालक्रम का बड़ा ही दुर्लभ आख्यान किया है। पूज्यपाद गुरुदेव का जन्म उ०प्र० के गाजियाबाद जनपद के मुरादनगर के पास खुर्रमपुर-सलीमाबाद गांव में एक निर्धन अनपढ़ कबीर पंथी जुलाहे के घर में सन् १९४२ में हुआ। लगभग दो माह की उम्र में उनकी माता ने उन्हें शवासन में लिटाया, कुछ समय बाद उनकी गर्दन दोनों ओर हिलने लगी, होंठ फड़फड़ाने लगे। इनकी इस अवस्था से घर के लोग भूत-प्रेत का साया समझ कर इन्हें मारते-पीटते, जिस कारण १५ वर्ष की उम्र में यह घर छोड़कर चले गये।

इनके प्रवचनों से स्पष्ट हुआ कि ब्र० कृष्णदत्त जी पूर्व जन्मों में शृंगीऋषि रहे हैं, जो आदि ब्रह्मा के वरिष्ठ शिष्य शृंगी ऋषि की आत्मा थे। इस काल में उन्होंने अपने छोटे जीवन में ५००० वेद पारायण तथा चतुर्वेद पारायण महायज्ञों का आयोजन कराया। १५ अक्टूबर १९९२ को ५० वर्ष की अवस्था में वे ब्रह्मलोक को सिधार गये, जिसकी उन्होंने पूर्व में ही घोषणा कर दी थी।

आर्यावर्त प्रिंटर्स, अमरोहा

'सौम्या सदन', गोकुल विहार, अमरोहा (उ.प्र.) मोबा. 9412139333